तृतीय अध्याय

खण्डकाव्य-परम्परा

ख

आधुनिक काल के पूर्व की धारा

हिन्दी काव्य परम्परा के लम्बे इतिहास के भीतर खण्डकाव्य-विकास का इतिहास बहुत महत्वपूर्ण है । हिन्दी में खण्डकाव्य की परम्परा विविध रूपों में विकसित हुई है । हिन्दी साहित्य के आदिकाल में राजनैतिक, सामाजिक अस्थिर परिस्थितियों के कारण इस साहित्यांग की अधिक प्रगति नहीं हो सकी । फिर भी इस काल में वीर तथा प्रेम विषयक कई आख्यान काव्य विरचित हुए । उनमें से कतिपय काव्य अपनी किन्हीं विशेषताओं के कारण खण्डकाव्य के निकट पहुँचने योग्य हैं ।

अपभ्रंश भाषा में विरचित 'सन्देशरासक' काव्य का नाम इस प्रसंग में उल्लेखनीय है । प्रस्तुत काव्य का रचना-काल बारहवीं सदी ईस्वी के लगभग माना जाता है ।[१] यह अब्दुल रहमान या अद्दमाण की प्रख्यात रचना है । 'मेघदूत' जैसे संस्कृत दूतकाव्यों की परम्परा में यह काव्य आता है । एक प्रोषितपतिका नायिका का विरह-निवेदन तथा अन्त में उसके संयोग का वर्णन ही इस काव्य का विषय है । विजयनगर की सुन्दरी नायिका अपने पति के स्तंभतीर्थ चले जाने के कारण विरह से पीड़ित थी । एक दिन उसने स्तंभ तीर्थ जाते हुए एक पथिक को देख लिया तथा उससे अपनी दशा का वर्णन किया और अपने पति को सुनाने के लिए एक सन्देश भी बता दिया । नायिका ने पथिक के सामने अपनी करुण कहानी का मार्मिक वर्णन सुना दिया । छहों ऋतुओं में उस विरहिणी की विरह दशा का भी उसने हृदयहारी चित्रण किया । विरहिणी का विरह निवेदन सुनकर उसके पति को सन्देश सुनाने के लिए पथिक जाने को तैयार हुआ, तो उसी समय नायक उसी ओर आता दिखायी

१- सन्देशरासक : सं० डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी , पृ० २४.

दिया । यहीं पर काव्य की समाप्ति होती है । काव्य समाप्त करते हुए कवि पाठकों को आशीष देता है कि जिस प्रकार काव्य नायिका को कार्य लाभ हुआ उसी प्रकार पाठकों का भी कार्य सिद्ध हो जाय ।

यह एक नायिकाप्रधान विरहकाव्य है । नायिका के विरह निवेदन से समस्त काव्य ओतप्रोत है । ऋतुओं का मनोहारी वर्णन भी संस्कृत के उस काव्य परम्परा के निर्वाह के रूप में हुआ है । अत्यन्त सीमित कथानक पर कवि ने एक सुन्दर विरह काव्य का संयोजन किया है । प्रस्तुत काव्य का हिन्दी साहित्य में अपना विशेष महत्व है ।

सन्देश रासक का कलापक्ष भी प्रौढ़ है । तीन प्रक्रमों में विभाजित इस काव्य में दो सौ तेईस छन्द हैं । विविध छन्दों के प्रयोग के कारण काव्य अधिक गतिशील एवं मनोरम हुआ है । कथासूत्र में बंधे हुए होने पर भी इसके छन्द मुक्तक गीतों के गुणों से युक्त है । गीतात्मकता प्रस्तुत काव्य का मुख्य गुण है । वस्तुतः सन्देशरासक काव्य गीतात्मक शैली का एक अत्यन्त सुन्दर काव्य है, जो काव्य रूप की दृष्टि से खण्डकाव्य के निकट है ।

" सन्देशरासक" की ही भाँति एक विरह काव्य है "बीसलदेव रासो ।" इसका रचनाकाल सन् १३४२ ई० के लगभग माना जाता है ।[१] वीणापाणि देवी सरस्वती तथा विघ्नेश्वर गणेश की स्तुतियों से काव्य प्रारंभ होता है । राजा बीसलदेव तथा राजमती की शादी, उनके विरह तथा पुनर्मिलन की कथा ही प्रस्तुत काव्य में वर्णित है । अजमेर के राजा बीसलदेव की शादी भोजराज की पुत्री राजमती से हुई । राजा बीसलदेव अपने को बड़ा प्रतापी समझता था और इस बात पर गर्वित भी था । राजा के घमण्ड को दूर करने के लिए एक दिन राजमति ने राजा से बताया कि उड़ीसा का राजा आपसे भी श्रेष्ठ हैं तथा उसके राज्य में खानों से हीरे उसी तरह निकलते हैं जिस तरह अजमेर में साँभर से नमक निकलता है । यह सुनकर राजा बीसलदेव उड़ीसा जाकर राजा के सेवक के रूप में रहने लगा ।

१- बीसलदेव रासो -- डॉ० माताप्रसाद गुप्त, भूमिका, पृ० ८८.

अब विवाहिता राणी राजमती पति विरह के कारण तड़पने लगी । आखिर उसने राजा के पास एक ब्राह्मण को दूत बनाकर भेज दिया । जब उड़ीसा के दरबार के लोगों तथा राजा को यह पता चला कि बीसलदेव अजमेर के राजा हैं । राजा ने बीसलदेव को असंख्य हीरे, रत्न आदि भेंट देकर विदा किया । राजा अपने देश लौट गये और राजा राणी का पुनर्मिलन हुआ ।

चार सर्गों में यह छोटी सी कथावस्तु वर्णित है । काव्यारंभ में मंगलाचरण तथा अन्त में आशीष है । अपने नाटकीय व्यक्तित्व तथा कथायोजना के कारण यह नायिकाप्रधान काव्य बन गया है । कथायोजना तथा भावात्मकता दोनों दृष्टियों से बीसलदेव रासो खण्डकाव्य कहलाने का अधिकारी है ।

इन दोनों काव्यों के अतिरिक्त इस युग के और भी कुछ काव्य ऐसे हैं जो अपनी आख्यानात्मकता तथा रूप लघुता के कारण खण्डकाव्य के निकट आते हैं । `जिनोदय सूरि विवाहलउ' तथा `हरिश्चन्द्र-पुराण' ऐसे ही काव्यग्रन्थ हैं । प्रथम का लेखक है मेरुनन्दन और द्वितीय का जाखू मणियार । प्रथम में जिनोदय सूरि के आध्यात्मिक परिणय की कहानी वर्णित है । जिनोदय सूरि के बचपन का नाम था सोमप्रभ । शैशव में एक दिन उनका मिलन जैनाचार्य जिनकुशल सूरि के साथ हुआ । अबोध बालक सोमप्रभ ने आचार्यश्री से दीक्षाकुमारी से उसकी शादी करा देने की विनय की । बालक की माता ने उसे खूब समझाया बुझाया । तप की भीषणता की बात बता दी । लेकिन बालक अपने निश्चय पर ही अडिग रहा और आखिर उनका आध्यात्मिक परिणय सम्पन्न हुआ । आध्यात्मिकता को अंग बनाकर विरचित इस काव्य की कथा रूपक कथा बन गयी है ।

एक छोटी सी कथावस्तु को लेकर प्रस्तुत काव्य रचा गया है । काव्य रूप की दृष्टि से यह काव्य भी खण्डकाव्य के निकट का कहा जा सकता है ।

राजा हरिश्चन्द्र की लोकप्रचलित पौराणिक कहानी के आधार पर `हरिश्चन्द्र पुराण'[१] काव्य रचा गया है । इस काव्य का रचनाकाल १३६६ ई० के लगभग है । लोकप्रचलित

१- सूरपूर्व ब्रजभाषा और साहित्य - डा० शिवप्रसाद सिंह, पृ० १६८.

भाव एवं भाषा में निर्मित यह काव्य गीतात्मकता के गुण से अभिमण्डित है। कथावस्तु की संयोजना एवं कथा पद की विशेषता के कारण यह काव्य भी खण्डकाव्य के आसपास का हो गया है।

पूर्वमध्यकाल - भक्तिकाल - हिन्दी साहित्य के इस सुवर्ण युग - में अन्यान्य साहित्यांगों की भाँति खण्डकाव्य का भी पर्याप्त विकास हुआ। भक्तिकाल की परिस्थिति आदिकाल से भिन्न ही रही। अब आश्रयदाता राजाओं का स्तुतिगान तथा लौकरंजन न रहा अब के कवियों का लक्ष्य। यह काल मुख्यतया धार्मिक सजगता का युग रहा तथा भक्ति ही प्रमुख काव्यप्रवृत्ति रही। एक ओर श्रीराम तथा श्रीकृष्ण को इष्टदेव बनाकर काव्यनिर्माण हुए। कृष्ण-भक्तिपरक खण्डकाव्य ही अधिक रचे गये। लौकरंजनकारी कृष्ण का जीवन शत-सहस्र लीलाओं से भरा पड़ा है और हर एक लीला खण्डकाव्य के लिए उपयुक्त वस्तु है। इसके विपरीत मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का जीवन अपनी समग्रता के कारण बड़े प्रबन्धों के लिए उपयुक्त रहा। उनके जीवन के हर एक कार्य परस्पर बँधे हुए रहे और सब उस महान लक्ष्य की ओर गुंफित थे, जिस महान उद्देश्य के लिए उन्होंने जन्म लिया था। --"उनके जीवन के सारे छोटे-मोटे कार्य उसी लक्ष्य पर पहुंचने के सोपान हैं। यही कारण है कि राम के जीवन पर खण्डकाव्य लिखने का साहस तुलसी जैसे समर्थ कवि ही कर सके।"[१] राम कथा सम्बन्धी खण्डकाव्य सीता विवाह सीताहरण आदि प्रसंगों पर लिखे गये।

भक्तिकालीन खण्डकाव्यों में गोस्वामी तुलसीदास का "पार्वतीमंगल सर्वश्रेष्ठ है। प्रस्तुत काव्य में राम-सीता के विवाह की कथा कही गयी है तथा साथ ही साथ अन्य तीनों भाइयों के विवाह की ओर संकेत भी किया गया है। काव्य के प्रारंभ में मंगलाचरण के बाद सीता के जन्म तथा धनुष यज्ञ के आयोजन की सूचना है। इसके उपरान्त महर्षि विश्वामित्र

१- हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य -- शिवाराम तिवारी, पृ० ७५.

के साथ राम-लक्ष्मण के वनगमन तथा राम द्वारा धनुष भंग का वर्णन है। राम सीता तथा अन्य तीनों भाइयों के विवाह का जिक्र आगे है। साकेत के लिए लौटते समय बीच में क्रुद्ध परशुराम से उनकी भेंट तथा राम के परशुराम को आश्वस्त करने का वर्णन है। आखिर परशुराम के राम को धनुष उपहार रूप में देकर प्रस्थान करने का तथा सबों के सहर्ष साकेत चले जाने का वर्णन हुआ है। काव्य-महिमा के वर्णन के साथ काव्य की समाप्ति हो जाती है।

यह काव्य २१६ चरण तथा हरिगीतिका छन्दों में रचा गया है। आठ चरण के बाद एक हरिगीतिका का प्रयोग ही काव्य के छन्द का क्रम है। काव्य सर्गबद्ध नहीं है। भाव एवं भाषा की दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास का 'जानकीमंगल' एक सर्वांग सुन्दर एवं सफल खण्डकाव्य है।

श्रीकृष्ण की लीलाओं पर कई खण्डकाव्य निर्मित हुए और कृष्ण-सुदामा का प्रसंग भी खण्डकाव्यकारों का प्रिय विषय बना। कृष्ण के वृन्दावन से द्वारका चले जाने पर गोपिकाओं के विरह तथा उद्धव प्रसंग पर भी कुछ खण्डकाव्य प्रणीत हुए। कृष्ण लीला संबंधी अन्यान्य प्रसंगों पर भी प्रचुर मात्रा में खण्डकाव्य विरचित हुए।

कृष्ण कथा पर आधारित एक अत्यन्त सुन्दर खण्डकाव्य है 'वेलि क्रिसन-रुक्मिणी री'। इसके रचनाकार हैं महाराज पृथ्वीराज। प्रस्तुत काव्य में कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह की कथा का वर्णन हुआ है। इसका रचनाकाल १५८० ई० (सं० १६३७) है।[१] विदर्भ के राजा भीष्म की पुत्री थी रुक्मिणी। जवानी में उसका मन कृष्ण में रम गया। माँ-बाप ने अपनी बेटी की अभिलाषा के अनुसार कृष्ण के साथ उसके विवाह करा देने का निश्चय किया। लेकिन रुक्मिणी के भाई रुक्म को यह अच्छा नहीं लगा। वह अपने बहन की शादी शिशुपाल से कराना चाहता था। इस उद्देश्य से उसने शिशुपाल को आमंत्रित किया। शिशुपाल बारात लेकर विदर्भ पहुँच गया। रुक्मिणी के पत्र से पता चलने पर

१- वेलि क्रिसन रुक्मिणी री -- हिन्दुस्तानी एकेडमी, पृ० २७२.

कृष्ण भी ससैन्य वहाँ आ गया । अम्बिका की पूजा के लिए मंदिर जाती हुई रुक्मिणी का हरण कृष्ण ने किया । शिशुपाल एवं कृष्ण की सेनाओं के बीच बड़ा भारी युद्ध हुआ और युद्ध में शिशुपाल की पराजय हो गयी । परास्त राजा शिशुपाल का कृष्ण ने वध नहीं किया, लेकिन उसके घमण्ड को चूर करने के लिए उसने उसके सिर के बाल मुड़वा दिये । फिर बलराम के आदेश पर कृष्ण ने उसके सिर के बाल पुनः लौट आने के लिए आशीर्वाद दिया । इसके उपरान्त कृष्ण रुक्मिणी के साथ द्वारका पहुँच गये । कृष्ण रुक्मिणी के संयोग तथा षट्ऋतु वर्णन के साथ काव्य समाप्त हो जाता है ।

कुल २०५ छन्दों में इस काव्य का प्रणयन हुआ है । यह सर्गबद्ध नहीं है । काव्यारंभ में मंगलाचरण और अन्त में फल वर्णन है । कुल मिलाकर कृष्ण कथा पर आधारित यह एक सफल खण्डकाव्य है ।

सुदामा प्रसंग को लेकर हलधरदास, आलम, वीरबल, मालन, वीर बाजपेयी, गंग, मुधरदास आदि कवियों ने 'सुदामा चरित्र खण्डकाव्य लिखे, लेकिन इनमें सर्वोत्तम है नरोत्तमदास कृत सुदामाचरित्र । दरिद्र विप्र सुदामा के बालसखा द्वारकाधीश कृष्ण से मिलन तथा कृष्ण के द्वारा सुदामा के दारिद्र्यहरण एवं अमूल्य सम्पत्तिदान की कथा ही काव्य-विषय है ।

श्रीकृष्ण की आदर्श मैत्री का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत काव्य में हुआ है । अपनी पत्नी के बारंबार आग्रह करने पर एक दिन सुदामा ने अपने बालसखा कृष्ण की राजधानी द्वारिका की ओर गमन किया । द्वारका में भक्तवत्सल, करुणानिधान श्रीकृष्ण ने अपने बालसखा का खूब आदर सत्कार किया । सुदामा भेंट के लिए जो चावल लाये थे उसे उन्होंने सहर्ष मुट्ठी भर खा लिया । सुदामा ठाठ-बाट के साथ चार दिन तक वहीं रहे । चार दिन के बाद वे लौट जाने को प्रस्तुत हुए । लाज के कारण अपनी दरिद्रता की बात उन्होंने कृष्ण से छिपा रखी । लेकिन सुदामा जब घर पहुँच गये तो जान गये कि कृष्ण ने परोक्ष

रूप से ही उनको सब कुछ धनसंपत्ति दे डाली थी ।

काव्य मंगलाचरण से शुरू होता है और कथा का प्रबन्धत्व सुदृढ़ है । श्रीकृष्ण के जीवन के एक महत्वपूर्ण प्रसंग पर ही प्रस्तुत खण्डकाव्य का ताना-बाना बुना गया है । सुदामा एवं सुशीला-पति-पत्नी के संवाद से कथा गतिशील हो जाती है । भिन्न-भिन्न १२१ छन्दों में कथा का संयोजन हुआ है और काव्य सर्गरहित खण्डकाव्य है । काव्य की सुन्दर भाषा शैली रसात्मकता तथा अलंकारों की मंजु योजना ने काव्य की चारुता में चार चांद लगा दी है ।

कृष्ण कथा सम्बन्धी अन्य सफल खण्डकाव्य हैं नन्ददास कृत भंवरगीत, रास-पंचाध्यायी, रुक्मिणी मंगल आदि ।

शैवधर्म के आधार पर भी शिव विवाह, पार्वतीमंगल जैसे खण्डकाव्य निर्मित हुए । शैव खण्डकाव्यों के संदर्भ में तुलसीदास जी का 'पार्वतीमंगल' उल्लेखनीय है । इसका रचनाकाल १५८६ ई० में हुआ ।[१] शिव पार्वती के परिणय की कथा ही इस खण्डकाव्य का विषय है । नारद से शिवपूजा करने के आदेश से प्रेरित पार्वती के तपस्या के लिए हिमवान चले जाने, उनकी कठोर तपस्या तथा अन्त में प्रेम-परीक्षा के उपरान्त शिव के प्रत्यक्ष होने तथा सप्तर्षियों के सान्निध्य में दोनों के परिणय सम्पन्न हो जाने का प्रस्तुत काव्य में वर्णन हुआ है । काव्य के प्रारम्भ में स्तुति तथा अन्त में फलश्रुति है । कथा सर्गों में विभाजित नहीं है । १४८ अरुण तथा १६ हरिगीतिका छन्दों में होकर कथा की सुसंयोजना हुई है । समग्रत: विचार करने पर ज्ञात होगा कि 'पार्वती मंगल' कला की कसौटी पर खरा उतरने वाला एक सफल खण्डकाव्य है ।

महाभारत एवं दूसरे पुराणों के आधार पर भी कुछ खण्डकाव्य रचे गये जैसे 'चक्रव्यूह', 'बभ्रुवाहन' । ऐतिहासिक कथानक भी इस काल के खण्डकाव्य के उपजीव्य बने ।

१- तुलसी ग्रन्थावली - नागरी प्रचारिणी सभा । (पार्वती मंगल, पृ० २५.)

ऐसे खण्डकाव्यों में प्रमुख है जटमल का रचा "गोरा बादल की कथा" नामक काव्य । रानी पद्मिनी के लिए रत्नसेन तथा अलाउद्दीन के बीच जो युद्ध हुआ वही प्रस्तुत काव्य का विषय है । रत्नसेन की सेना के मुख्य सैनिक थे गोरा तथा बादल । उनकी वीरता का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत काव्य में हुआ है । चित्तौड़ के राजा रत्नसेन तथा सिंहलद्वीप की रानी पद्मिनी चित्तौड़ में आनन्दपूर्वक वैवाहिक जीवन बिता रहे थे । रत्नसेन के द्वारा दरबार से निकाला गया मंत्री राघवचेतन अलाउद्दीन के पास जाकर रानी पद्मिनी के सौन्दर्य का लुभावना वर्णन सुनाकर उसे प्रलुब्ध करता है । पद्मिनी को पाने के उद्देश्य से अलाउद्दीन रत्नसेन को अपनी राजधानी में आमंत्रित करता है और छल से उन्हें बन्दी बनाता है । पता चलने पर रानी पद्मिनी अलाउद्दीन के पास जाने को उद्यत होती है और अपने मुख्य सैनिक गोरा और बादल के पास पान का बीड़ा लेकर जाती है और वे राणी की रक्षा करने का वचन दे देते हैं । गोरा और बादल अलाउद्दीन के पास यह समाचार पहुँचाते हैं कि राणी पाँच सौ सहेलियों के साथ आ रही है । पाँच सौ डोलियों में दो-दो सिपाही बैठ गये और उसे चार-चार सिपाहियों ने कहार बनकर उठा लिया । अलाउद्दीन के आदेश के अनुसार रत्नसेन राणी से मिले । तुरन्त रत्नसेन घोड़े पर सवार होकर भाग निकले तथा रत्नसेन और अलाउद्दीन की सेना के बीच भयानक युद्ध शुरू हुआ । लड़ते-लड़ते गोरा की वीर मृत्यु हुई और बादल युद्ध में विजयी होकर चित्तौड़ वापस गये ।

गोरा तथा बादल की वीरता का सम्मोहक वर्णन प्रस्तुत काव्य में हुआ है । वीर-रसात्मक इस काव्य में एक सौ पचास विविध छन्दों में यह वीर कथा कही गयी है । कथा सर्गों में विभाजित नहीं है, लेकिन स्थान-स्थान पर वर्णन संकेत दिये गये हैं । ऐतिहासिक घटना पर आधारित यह वीर रसात्मक खण्डकाव्य कला की दृष्टि से भी सफल है ।

सूफी कवियों ने लोकप्रसिद्ध भारतीय कथाओं को आधार बनाकर प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना की । रूप वर्णन तथा प्रकृति वर्णन का ऐसे काव्यों में प्रमुख स्थान है । सुसंगठित कथायोजना पर भी कवियों का मोह रहा है । इस प्रकार के काव्यों में मृगावती (कुतुबन) चित्रावली (उस्मान) मधुमालती (मंझन) आदि प्रेमगाथाएं खण्डकाव्य के अन्तर्गत

समाविष्ट हो सकती हैं । फारसी की मसनवी काव्यशैली का स्पष्ट प्रभाव इन काव्यों में दर्शनीय है । अपभ्रंश की `चरित काव्य` की श्रेणी में आने वाले हैं ये काव्य । लेकिन कथातत्व एवं उसकी योजना की दृष्टि से ये प्रेममूलक खण्डकाव्यों के निकट के माने जा सकते हैं ।

उत्तरमध्यकाल अथवा रीतिकाल में भी प्रस्तुत साहित्यांग का निर्माण प्रचुर परिमाण में हुआ । इस काल में सुजान चरित (सूदन) उषा हरण(प्रेमानंद) स्नेहलीला(मनोहरदास) उषा लीला, ध्रुवलीला (सुन्दर ब्राह्मण) हम्मीर हठ (चन्द्रशेखर वाजपेयी) रुक्मिणी परिणय (रघुराजसिंह) आदि अनेकों खण्डकाव्य प्रणीत हुए । पौराणिक तथा ऐतिहासिक प्रख्यात कथावस्तु ही इनमें अधिकांश खंडकाव्यों का आधार है । तत्कालीन मूलप्रवृत्ति-शृंगार के अनुरूप ही काव्य सृजन भी हुआ है । प्रमुखतया इस काल के प्रेममूलक खण्डकाव्यों में शृंगार रस अपने अंगों उपांगों सहित उपस्थित है । अलंकारों की मंजु योजना, शैली की सुरम्यता तथा कसावट के कारण इस काल के खण्डकाव्य अधिक मनोज्ञ हुए हैं ।

समग्रत: विचार करने पर ज्ञात होगा कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में खण्डकाव्य विधा की परम्परा का सुव्यवस्थित प्रारम्भ तथा विकास मध्यकाल से ही होता है । इन खण्डकाव्यों की कथावस्तुएं अधिकांशत: पौराणिक हैं और खण्डकाव्य वर्णनात्मक । प्रमुख घटना इनमें एक ही रहती है । इस कारण कथा की गति सीधी ही रहती है । सर्गबद्ध एवं सर्गमुक्त काव्य इस काल में विरचित हुए । कतिपय काव्यों में सर्गों का निर्धारण विलास, अंक, अध्याय आदि नामों पर हुआ है । स्थान-स्थान पर कुछ काव्यों में वर्णन-संकेत भी दिया गया मिलता है । मध्यकालीन खण्डकाव्यों में शृंगार रस ही मुख्य रूप से विद्यमान है । शृंगार रस के संयोग एवं वियोग -- दोनों पक्ष इस काल के खण्डकाव्यों के अवलम्बन रहे हैं । शृंगार के बाद दूसरा स्थान वीर रस का आता है । ऐतिहासिक कथावस्तुओं पर आधारित खण्डकाव्य -- जिनके मुख्य विषय युद्ध हैं -- में वीर रस ही अंगी रूप में प्रयुक्त है । करुण, वात्सल्य, शांत आदि रसों का भी अंग रूप में प्रयोग हुआ है ।

छन्दों की दृष्टि से देखें तो विविध छन्दों से अभिमण्डित एक काव्यरूप के रूप में खण्डकाव्य नज़र आते हैं। एक ही छन्द में निर्मित खण्डकाव्य एक ओर तथा बहु छन्दों में निर्मित खण्डकाव्य दूसरी ओर दिखाई पड़ते हैं। मध्यकालीन खण्डकाव्यों में भारतीय आचार्यों द्वारा निर्धारित खण्डकाव्य नामक काव्यरूप के लक्षणों का पालन भी परिलक्षित होता है। अधिकांश काव्यों की भाषा अपभ्रंश, अवधी, ब्रजी या राजस्थानी तथा किन्हीं काव्यों की मिश्रित है। सचमुच हिन्दी की खण्डकाव्य परम्परा के विकास में मध्यकालीन खण्डकाव्य धारा का अपना विशेष स्थान है।

"हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य" नामक शोधप्रबन्ध के प्रौढ़ लेखक सियाराम तिवारीजी ने "निष्कर्ष" में सूचित किया है कि "आधुनिक हिन्दी खण्डकाव्य मध्यकालीन खण्डकाव्यों से आगे नहीं बढ़ा है, पाश्चात्य प्रभाव के कारण मंगलाचरण और फल वर्णन भले ही छट गया हो।"[१]

मध्यकालीन खण्डकाव्यों के उपरान्त जो आधुनिक खण्डकाव्य प्रचुर मात्रा में विरचित हुए, उनका दिग्दर्शन मात्र तिवारीजी के उपर्युक्त कथन को निर्मूल तथा आपकी उक्ति को केवल पूर्वाग्रह सिद्ध करने के लिए अलम् है। आधुनिक खण्डकाव्य -- जो रूप एवं भाव में नवनवोन्मेष एवं विकास के साथ आया -- उन पर भी विचार करना चाहिए। सचमुच आधुनिक काल की प्रवृत्तियों के अनुकूल प्रस्तुत काव्य रूप भी रूप एवं भाव में परिवर्तित हुआ है। यह परिवर्तन सचमुच कला के विकास का द्योतक है। स्थूल कथावस्तु के स्थान पर सूक्ष्म कथावस्तुएं भी काव्याधार बनीं। यद्यपि पुरानी कथावस्तुओं के आधार पर ही अधिकांश आधुनिक काव्य प्रणीत हुए तथापि उनमें कवि की मौलिकता की झलक अवश्य है। पुरानी काव्यवस्तुओं को कालोचित नवीन व्याख्याओं व उद्भावनाओं के साथ ही प्रस्तुत किया है। आधुनिक युग में आकर काव्य के नायक-नायिका व्यक्ति के धरातल से सामाजिक धरातल

१- हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य - सियाराम तिवारी, निष्कर्ष, पृ० ४११.

की ओर उतर आये । यही नहीं ये काव्य वर्णनात्मकता को छोड़कर भावपरकता की ओर उन्मुख हुए । पात्रों के चरित्र एवं उनके मनोवैज्ञानिक चित्रण को प्राधान्य मिलने लगा । भावपक्ष की भाँति कलापक्ष में भी परिवर्तन के चिह्न आ खड़े हुए । छन्दोबद्ध काव्यों की जगह मुक्तछन्द में भी काव्य रचना हुई । इन मुक्त छन्दों में रचित काव्यों में भी यह बात स्पष्ट द्रष्टव्य है कि ऐसे काव्यों में भी प्रबन्धत्व अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है । अनुयोज्य एवं नितांत नूतन अलंकारों का प्रयोग भी आधुनिक खण्डकाव्यों में दर्शनीय है । यों भाव एवं रूप की दृष्टि से आधुनिक खण्डकाव्यों में परिवर्तन की जो स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है वह वस्तुतः कला के विकास का ही द्योतक है ।

(आ) आधुनिक खण्डकाव्य

१- प्रारंभिक अथवा छायावाद पूर्व खण्डकाव्य

आधुनिक काल के प्रारंभ से लेकर छायावाद काल तक प्रकाशित खण्डकाव्यों का विश्लेषण इस प्रसंग में करना उचित है । प्रकाशन काल के अनुसार खण्डकाव्य क्रमबद्ध किये गये हैं । इस काल के प्रारंभिक काल में ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों में खण्डकाव्य विरचित हुए । कतिपय परम्परा बद्ध शैली के रहे तथा कुछ परम्परा मुक्त नितांत नवीन शैली की भी जिन्हें नवीन प्रयोग के काव्य अभिहित किये जा सकते हैं । सन् १९१० तक आधुनिक खण्डकाव्यों की सबल परम्परा नहीं चली, काव्य संसार में मुक्तक काव्य का ही अधिक प्रचार रहा । लेकिन सन् १९१० ई० के अनन्तर मुक्तक काव्यों की जगह महाकाव्य एवं खण्डकाव्य प्रचुर परिमाण में निर्मित हुए । उसके उपरान्त तो खण्डकाव्य की एक लम्बी परम्परा ही चली - जो आज भी निर्बाध रूप से चली आ रही है ।

एकांतवासी योगी (श्रीधर पाठक)

आधुनिक काल के प्रारम्भ में विरचित खड़ी बोली की सर्वप्रथम काव्यानूदित के रूप में प्रस्तुत काव्य का बहुत अधिक महत्व है । अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ (Hold-Smith) के मशहूर काव्य 'हरमिट' (Hermit) का यह सुन्दर काव्यानुवाद

है । एक अत्यन्त मनोरम प्रेमाख्यान ही काव्य विषय है । कवि ने प्रेम को वासना के रूप में चित्रित न करके उस मानवीय वृत्ति के सत्य, शुद्ध एवं शुद्ध रूप की प्रतिष्ठा की है । एक अनुपम सुन्दर नारी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसके पीछे पड़ जाता है एक युवक । लेकिन नारी के द्वारा प्रेम परीक्षा लेने की उदासीनता से दुःखी होकर प्रेमी एकांतवासी योगी बन जाता है । कुछ वर्ष बीत गये । अचानक एक दिन उसके पास एक युवक वेषधारी व्यक्ति पहुँचता है । एकांतवासी योगी उसे अपने यहाँ शरण दे देता है और अवसाद की म्लान मुद्रा में उसे देखकर उसका कारण पूछता है । उत्तर में वह युवक अपने प्रेम की करुण कहानी सुनाता है । जल्दी ही यह भेद खुलता है कि वह युवक वेषधारी व्यक्ति और कोई नहीं, उसकी ही प्रेमिका है जो अपने प्रेमी की खोज में निकल पड़ी है । यों विधि विधान से उस एकांत वन में उस प्रेमी प्रेमिका का फिर से मिलन हो जाता है ।

एक सुमधुर प्रेमतत्व का सुन्दर आविष्करण ही मूल कृति में प्रस्तुत हुआ है । "कथा का अभिनव प्रेम तत्व, वस्तुस्थिति का गोपन, कौतूहल और विस्मय का आवरण और अंत में अमर प्रेमतत्व की अभिव्यंजना एकांतवासी योगी काव्य की विशेषतायें हैं ।"[1] पाठक जी का अनुवाद भी अनूठा निकला है । सचमुच पाठक जी के प्रस्तुत काव्य में अन्तर्भूत प्रेमतत्व ने हिन्दी के अनेकों कवियों को मोह लिया । प्रसाद जी के "प्रेमपथिक", रामनरेश त्रिपाठी जी के "मिलन" और सुमित्रानन्दन पंतजी की "ग्रंथि" में इस प्रेमतत्व के अमिट प्रभाव की झाँकी है ।

इसके उपरान्त भी कवि ने 'श्रांतपथिक' तथा ऊजड़ ग्राम नाम में गोल्डस्मिथ के काव्य "ट्रावलर" तथा 'डिसर्टेडविलेज' के काव्यानुवाद प्रस्तुत किये । प्रथम काव्य खड़ी-बोली में दूसरा ब्रजभाषा में लिखा गया । आधुनिक हिन्दी की अनूदित काव्यकृतियों में इन दोनों काव्यों का महत्वपूर्ण स्थान है ।

१- हिन्दी कविता में युगांतर - डा० सुधीन्द्र, पृ० १३६.

ऊजड़ ग्राम (श्रीधर पाठक)

"एकांतवासी योगी" काव्य की सफलता से प्रेरित कविवर पाठक जी ने गोल्ड-स्मिथ के द डिज़र्टेड विलेज (The Deserted Village) का भी सुन्दर काव्यानुवाद प्रस्तुत किया -- "ऊजड़ ग्राम" । यह तो मधुर ब्रजभाषा की मनोरम कृति बन गयी है ।

प्रस्तुत काव्य में औबर्न (Auburn) नामक एक उजड़े हुए ग्राम का वर्णन है । कहा जाता है कि यह कवि गोल्डस्मिथ की जन्मभूमि आयरलैंड का एक गांव था, जहां कवि ने खेलते कूदते अपने बचपन के दिन बिताये थे । गांव के विनाश एवं उसके पतन का मार्मिक वर्णन इसमें हुआ है । कविता देवी की वन्दना के साथ यह काव्य समाप्त हो जाता है । ४२४ पंक्तियों में प्रस्तुत काव्य का प्रबन्धयुक्त वर्णन हुआ है ।

मूलकृति की मनोज्ञता को बनाये रखते हुए ही कविवर त्रिपाठी जी ने उसका काव्यानुवाद किया है । इसके लिए कवि ने रोला छन्द का प्रयोग किया है । एक छन्द उद्धृत है --

" हे प्यारे औबर्न सकल गाम न सों न्यारे ।
जहां श्रमी कृषिकार की सुख सम्पति पूरे ।
जहां रसीली ऋतु बसन्त पहले ही आवत ।
जात समय विलमाय फूल फल देर लगावत ।"[१]

श्रांतपथिक (श्रीधर पाठक)

यह कविवर गोल्डस्मिथ के काव्य "द ट्रावलर" (The Traveller) का काव्यानुवाद है । इसमें अपने सुख की खोज में पथिक बनने वाले कवि की कथा चित्रित हुई है ।

१- Sweet Auburn ! loveliest village of the plain where health and plenty cheered the labouring swain, where smiling spring its earliest visit and parting summer's lingering blooms delayed.

The Deserted Village: Goldsmith. Page 1, St. 4.

काव्य के प्रारंभ में कवि अपने भाग्य के प्रति अपने मन की ममता प्रकट करते हैं । फिर तो वे वास्तव सुख प्राप्त करने के उपायों के विचारों में डूब जाते हैं । आल्प्स पर्वत की चोटी पर बैठकर कवि मानवीय सुख संतोष के बारे में चिंतन विचिंतन करते हैं । अपने पास वाले राज्यों के गुण-दोषों का भी वे व्याख्यान करते हैं । अन्त में कवि यह महान् तत्व पहचान लेते हैं कि व्यक्ति का सुख तो उसके हृदय में ही निहित है, बाहर उसकी खोज करना व्यर्थ है । कवि कहते हैं --

> मेरा भाग्य ही मुझे घुमाता देश-विदेश घुमाता है ।
> जग भर में कोई भी अपना ठौर दृष्टि नहीं आता है ।[१]

सांसारिक सुख सम्बन्धी दार्शनिक विचारों से युक्त इस प्रौढ़ काव्य का अनुवाद भी गंभीर हुआ है । खड़ीबोली में कवि ने इस काव्य का अनुवाद किया है ।

हरिश्चन्द्र (जगन्नाथदास रत्नाकर)

राजा हरिश्चन्द्र की सत्यदीक्षा की पौराणिक कथा बहुत मशहूर है । राजा हरिश्चन्द्र के चरित्र के एक महान् पक्ष को महत्व देकर विरचित एक सफल खण्डकाव्य हरिश्चन्द्र । हिन्दी के श्रेष्ठ कवि श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर का यह काव्य सन् १९१४ में रचा गया । प्रस्तुत खण्डकाव्य का मूलाधार भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का लिखा सत्य हरिश्चन्द्र नामक नाटक है ।

इस सर्गबद्ध खण्डकाव्य में चार सर्गों में कथा वर्णित है । प्रथम सर्ग में नारद के मुँह से हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा की खबर सुनकर इन्द्र के अपने इन्द्रपथ के भ्रष्ट होने के डर का वर्णन है । इन्द्र विश्वामित्र के द्वारा राजा के सत्य की परीक्षा लेने का प्रयत्न करता है । इसके लिए इन्द्र विश्वामित्र को हरिश्चन्द्र के विरुद्ध कर देते हैं । विश्वामित्र

१- My fortune leads to traverse realm along And find no spot of all the world my own.

- The Traveller: Goldsmith, page: 29-30.

देवेन्द्र के मनोरथ के अनुकूल कार्य करने का वादा करते हैं । द्वितीय सर्ग में विश्वामित्र के अयोध्या (कण्ठकौशिक) पहुंचने का वर्णन है । वहां पहुंचकर वे राजा हरिश्चन्द्र से दान-स्वरूप सम्पूर्ण राज्य मांगते हैं । राजा दान देते हैं । तब दान की दक्षिणा के रूप में फिर एक हजार सुवर्ण मुद्रा लाने की आज्ञा महर्षि दे देते हैं । राजा अपने राज्य से उसे ले लेने की विनती करते हैं । पर दान किये गये राज्य पर तथा उसकी सम्पत्ति पर राजा का अनधिकार महर्षि घोषित कर देते हैं । राजा असमंजस में पड़ जाते हैं । काशी जाकर सुवर्णमुद्रा कमाकर लाने के लिए राजा महर्षि से एक मास की अवधि की मांग करते हैं तो महर्षि स्वीकार करते हैं ।

तृतीय सर्ग में काशी में हरिश्चन्द्र तथा उनके परिवार के जीवन की कारुणिक गाथा है । राजा अवधि को बीतते देखकर बाजार में पुकार लगाकर रानी शैव्या को एक उपाध्याय के हाथ बेच देते हैं । फिर भी उससे ऋणपूर्ति नहीं होती । तब वे स्वयं अपने को एक चण्डाल के हाथों बेचकर ऋण विमुक्त हो जाते हैं । राजा श्मशान पर कफन-कर ग्रहण करने के काम पर चण्डाल द्वारा नियुक्त किये जाते हैं तथा रानी उपाध्याय के यहां दासी का कार्य करती है । चतुर्थ सर्ग में "परीक्षा" का वर्णन है । प्रारम्भ में मरघट का भीषण दृश्य है । यहीं शैव्या अपने मृत पुत्र के संस्कार के लिए आती है । कफन-कर के अभाव में हरिश्चन्द्र उसका संस्कार करने नहीं देता । अन्त में कफन-कर के रूप में आधी साड़ी मांगकर हरिश्चन्द्र अपनी सत्यदीक्षा का सफल परिचय देते हैं । इस अवसर पर भगवान् प्रत्यक्ष हो जाते हैं । बेटा रोहित पुनः जी उठता है । वहां उपस्थित सब के सब हरिश्चन्द्र के सत्य पालन का कीर्तिगान गाने लगे । विश्वामित्र माफी मांगते तथा इन्द्र भी अपनी दुष्ट मनोवृत्ति पर लज्जित हो जाते हैं । सर्गान्त में हरिश्चन्द्र द्वारा भगवान से वर के रूप में प्रजा के लिए वैकुण्ठ तथा भारत के लिए यज्ञ आदि मांगने का वर्णन है । आखिर रोहित का राज्याभिषेक सम्पन्न हो जाता है तथा रानी समेत राजा स्वर्ग की ओर प्रस्थान करते हैं ।

यों प्रस्तुत काव्य में राजा हरिश्चन्द्र की सत्यदीक्षा के प्रसंग का चार सर्गों में वर्णन हुआ है । आदर्श मानव के रूप में हरिश्चन्द्र का चित्रण हुआ है । करुण रस का

पूर्ण परिपाक इसमें हुआ है । अंग रूप में वीभत्स रस की योजना है । ब्रजभाषा की सुललित काव्यशैली के कारण काव्य और मनोज्ञ निखरा है । "ब्रजभाषा के खण्डकाव्यों में इस चतुःसर्गी काव्य का अपना स्थान है ही, हिन्दी खण्डकाव्यों की आदर्श परम्परा स्थापित करने में भी 'हरिश्चन्द्र' की एक निश्चित महत्ता है ।"[१]

प्रेमपथिक (जयशंकरप्रसाद जी)

प्रस्तुत काव्य ब्रजभाषा में रचित है । इसका एक संस्करण खड़ीबोली में भी मिलता है । उसमें स्वयं कवि ने निवेदन किया है कि "यह काव्य ब्रजभाषा में आठ वर्ष पहले मैंने लिखा था ।"[२] यह खड़ी बोली संस्करण सं० १९७० में हुआ था । तब तो इस काव्य के ब्रजभाषा रूप का रचनाकाल सन् १९०५ ठहरता है । प्रेम के दिव्य, भव्य एवं विराट रूप का दिग्दर्शन प्रस्तुत काव्य में हुआ है । काव्यारंभ में प्रेम-पथ का पथिक अपने नगर से प्रस्थान करता है । प्रकृति के मनोहारी दर्शन से उसका मन मुग्ध हो जाता है । ग्राम देवता की वन्दना करके वह एक वट वृक्ष की सुरम्य शीतल छाया में विश्राम लेने लगा तो एक पपीहे की 'पी कहाँ' की पुकार सुनता है । पुकार सुनने पर उसके हृदय में प्रेम की पीर जाग पड़ती है । प्रिया की सुमधुर स्मृतियाँ उसके हृदय में घर कर लेती हैं । प्रिया के ध्यान के साथ वह आगे बढ़ा और एक सरोवर से पानी पीकर अपनी प्यास बुझायी तथा चलते-चलते एक मरुप्रदेश पहुँच गया । विभिन्न प्रकार के विकार विचारों की लहरों से आलोड़ित पथिक के सम्मुख स्वयं प्रेम अवतरित होकर उसे लौट जाने का सन्देश सुनाता है । पथिक का मन नवोन्मेष से भर उठता है । उसे ज्ञात होता है कि प्रेम सागर अपार है तथा उसका कुछ छोर नहीं है ।

प्रस्तुत प्रणय कथातंत्री पर ही प्रस्तुत खण्डकाव्य का संयोजन सम्पन्न हुआ है । इस प्रणय कथा का प्रमुख लक्ष्य कथावस्तु या घटनाओं का संयोजन नहीं । प्रणय के बारे में

१- बीसवीं शती का हिन्दी काव्य - प्रतिनिधि कवि - डा० देवर्षि सनाढ्य, पृ० ५६.

२- प्रेमपथिक (खड़ीबोली) - माघशुक्ल ५, १९७० वि०.

अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति ही कवि का लक्ष्य है । प्रेमतत्त्व की महत्ता का गायन करने वाला यह काव्य कला पक्ष की दृष्टि से भी प्रौढ़ एवं सफल है । प्रेम के स्वरूप की सुन्दर व्याख्या भी इसमें निहित है । ब्रजभाषा की सरस सुन्दर एवं सुललित शैली में यह काव्य अधिक निखर उठा है । श्रीधरपाठक के एकांतवासी योगी के प्रेमतत्त्व का प्रखर प्रभाव 'प्रेमपथिक' में दर्शनीय है । स्वच्छन्दता का विकसित रूप प्रस्तुत काव्य में विद्यमान है ।

रंग में भंग (मैथिलीशरण गुप्त)

आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक खण्डकाव्य है "रंग में भंग" । हिन्दी खण्डकाव्य जगत् को यह राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी की पहली देन है । इसका प्रकाशन सन् १९१० ई० में हुआ । एक विवाह की शोकांत कथा ही इसमें वर्णित है । शीर्षक भी अर्थबोध देने में नितांत समर्थ है । कथा की पृष्ठभूमि कोरी काल्पनिक नहीं, ऐतिहासिक है । कथाकाल विक्रमी संवत् १३८३ है । बूंदी के राजा हामाजी के स्वर्ग सिधारने पर उनके पुत्र वरसिंह राजगद्दी पर बैठ गये । वरसिंह के छोटे भाई थे लालसिंह जो राजकाज की बातों में उनकी सहायता करते थे । प्रभावती भाग (लालसिंह) की सुन्दरी इकलौती बेटी थी । सीसोदिया वंश का हीरा राणा खेतल से वे अपनी सयानी बेटी की शादी कराना चाहते थे । इन्हीं दिनों राणा के वैद्य चित्तौर में भूगर्भ से एक चौमुखी प्रतिमा बाहर निकाली गयी । राजदरबार में लायी गयी उस प्रतिमा को देखकर राजकवि बारूजी ने यह अनूठी कल्पना की कि 'स्वर्ग में पाताल में भूप आप सा कोई नहीं, शीश में अपना कंटाक जो मिले कोई नहीं' । राणा प्रसन्न हो गये । शादी का शगुन ठीक करने के लिए आये लोगों से यह खबर सुन ली तो लालसिंह को बुरा लगा । शादी की जोरदार तैयारियां हुईं । शादी धूमधाम के साथ सम्पन्न हुई और वर ससुराल में कुछ दिन ठहरे । एक दिन दरबार में लालसिंह ने कवि बारूजी की पूर्वोक्ति पर उनकी हंसी उड़ायी । बारूजी खिन्न हुए तथा निश्चिंत होकर उन्होंने तलवार से स्वयं अपना गला काट डाला । बड़ी भारी खलबली मच गयी । लालसिंह की इस चुनौती को राजा ने स्वीकार किया और कमर कसकर लड़ने चढ़ा । वरसिंह ने शांति

स्थापित करने की भरसक चेष्टा की । युद्ध के फलस्वरूप पर पक्ष के अधिकांश लोग मृत्यु के घाट उतारे गये और बचे हुये लोगों को मरसिंह ने शरण दे दी । अनन्तर प्रभावती दुःख के मारे, राणा द्वारा मना करने पर भी पति सेतल के साथ सती हुई ।

यहाँ कथा सम्पूर्ण हुई है । गुप्त जी ने प्रस्तुत कथा के अनुबन्ध में एक और घटना की भी चर्चा की है । सेतल की मृत्यु की वार्ता ने चित्तौड़ में आतंक मचा दिया । लाखा गद्दी पर बैठे । उन्होंने भीषण प्रतिज्ञा की कि दुर्ग बूँदी को तोड़ने के बाद ही अन्न ग्रहण किया जायगा । दरबारियों ने राणा को अपनी प्रतिज्ञा के पालन की कठिनाई की याद दिलायी और नकली किला बनाकर उसे मिटाने का आदेश दिया । किला तोड़े जाने का दिन निकट आ गया । एक दिन बूंदीवासी वीर हाडा कुंभ ने यह बनावटी किला देख लिया । वह राणा की रक्षा के लिए चित्तौड़ आया हुआ था । उसकी दृष्टि में वह नकली किला चढ़ गया । उस प्रतिकृति को देखते ही उसका सोया देशप्रेम छटपटा उठा । अपने देश के किले की रक्षा करने को वह तुल गया । किला तोड़ने के लिए आये राणा को उसने चुनौती दे दी । राणा ने उसकी चुनौती को स्वीकार किया । दोनों ओर से तीरों की बौछार शुरू हुई । हाडा देश की रक्षा में शहीद हो गये ।

भारतवर्ष के इतिहास में राजपूतों की वीरता एवं आत्मगौरव का उज्ज्वल चित्रण है । राजपूती इतिहास पर आधारित है गुप्त जी के इस खण्डकाव्य की कथावस्तु । प्रस्तुत काव्य में कवि ने मध्ययुगीन भीतिवादिता, आदर्श धर्म, कर्तव्य भावना आदि का सुन्दर चित्रण किया है । राजपूतों के मिथ्याभिमान का तथा उनके वीरत्वादर्शों एवं स्त्री धर्म के सती पक्ष की महानता का वर्णन भी इसमें हुआ है ।

कलापक्ष की दृष्टि से भी यह काव्य मनोज्ञ है । गीतिका छन्द का प्रयोग काव्य में हुआ है ।

जयद्रथ वध (मैथिलीशरण गुप्त जी)

गुप्त जी का यह खण्डकाव्य सन् १९१० ई० में प्रकाशित हुआ । सात सर्गों में इस प्रबन्ध काव्य का प्रणयन हुआ है । कौरवपक्षी महारथियों द्वारा अभिमन्यु के मारे जाने के अनन्तर, पुत्र-शोक-पीड़ित अर्जुन की जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा तथा उसकी पूर्ति की कथा इस काव्य में वर्णित है । प्रथम सर्ग में अभिमन्यु वध का करुण रस-पूर्ण वर्णन मिलता है । द्रोण के दुर्भेद्य चक्रव्यूह को तोड़ने में अन्य पाण्डव असमर्थ रह जाते हैं तब शूर-वीर अभिमन्यु भिड़ कर व्यूह में प्रवेश करता है और चक्रव्यूह का भेदन करता है । लेकिन सप्तरथी मिलकर उस सोलहवर्षीय बालक को मार डालते हैं । द्वितीय सर्ग में अभिमन्यु की मृत्यु पर अभिव्यंजित होने वाले अनन्त शोक का मार्मिक वर्णन है । पाण्डव युद्ध से विरत होने की सोचते हैं । पर श्रीकृष्ण उन्हें समझा बुझाकर युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं । अर्जुन-प्रतिज्ञा, द्रौपदी, सुभद्रा आदि का विलाप तथा अर्जुन की वीरता का वर्णन इस सर्ग में हुआ है । तृतीय सर्ग में श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते तथा पाण्डवों को शांत करते हैं । अभिमन्यु का दाह-संस्कार होता है और करुणापूर्ण विलाप से वातावरण भर जाता है । उत्तरा अपने गर्भ में पलने वाले बच्चे के लिए पति के साथ सती नहीं होती । चतुर्थ सर्ग में अर्जुन द्वारा पाशुपत अस्त्र प्राप्ति का वर्णन है । अस्त्र प्राप्ति के अनन्तर उनके प्रतिज्ञा पालन का विश्वास दृढ़ हो जाता है । अर्जुन का शौर्य वर्णन भी प्रस्तुत सर्ग में हुआ है । पंचम सर्ग में कौरवों व पाण्डवों के बीच के भीषण युद्ध का वर्णन है । छठे सर्ग में जयद्रथ वध की घटना का मर्मस्पर्शी चित्रण है । इसमें अर्जुन के चिंतागमन, जयद्रथ का प्रकट होना, तत्समय ही कृष्ण की माया से छिपे सूर्य का प्रकट होना, कृष्ण के इशारे पर अर्जुन द्वारा जयद्रथ के सिर काट लेने तथा उसके सिर के अपने पिता की गोद में जा गिरने का वर्णन है । अंतिम सर्ग (सप्तम) में कवि ने कथा का उपसंहार किया है । विजयी अर्जुन कृष्ण के साथ अपने शिविर लौटते हैं । युधिष्ठिर द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति तथा कृष्ण के अवतार रूप में वर्णन के साथ प्रस्तुत खण्ड-काव्य की समाप्ति हो जाती है ।

गुप्त जी ने महाभारत के द्रोण पर्व में वर्णित अभिमन्यु वध तथा जयद्रथवध के आख्यान के आधार पर प्रस्तुत खण्डकाव्य की रचना की है । पुरानी कथावस्तुओं के नवीन युगानुकूल बुद्धिवादी परिवर्तन के साथ प्रस्तुतीकरण की परम्परा अब विशेष रूप से विकसित नहीं थी । प्रस्तुत काव्य में भी महाभारत की कथा का पुनराख्यान ही हुआ है । लेकिन मार्मिक प्रसंगों के चुनाव तथा उनके विस्तृत वर्णन में कवि जागरूक रहे हैं । 'महाभारत' की कथा का कतिपय जगहों पर कवि ने परिवर्तन भी किया है । जयद्रथ वध में अभिमन्यु स्वयं चक्रव्यूह भेदन की इच्छा प्रकट करते हैं ।[१] लेकिन 'महाभारत' में युधिष्ठिर अभिमन्यु को चक्रव्यूह भेदन का कार्य सौंप देते हैं ।[२] चक्रव्यूह भेदन के पूर्व अभिमन्यु के उत्तरा के साथ मिलन, अभिमन्यु का दारसंस्कार, आदि का भी विस्तृत वर्णन प्रस्तुत काव्य में हुआ है ।

महाभारत के एक प्रमुख प्रसंग पर आधारित एक वर्णनात्मक खण्डकाव्य है जयद्रथ वध । पात्रों के चरित्र का उज्ज्वल चित्रण काव्य में हुआ है । वीर, करुणा आदि रसों की समन्वित अभिव्यक्ति काव्य में हुई है । सम्पूर्ण काव्य में एक ही छन्द-हरिगीतिका का सफल प्रयोग हुआ है । द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता की स्पष्ट झाँकी प्रस्तुत खण्डकाव्य में निहित है ।

मौर्यविजय (सियारामशरण गुप्त जी)

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी के छोटे भाई सियारामशरण गुप्त जी भी भारतीय संस्कृति के हिमायती उपासक तथा देश प्रेमी कवि हैं । 'मौर्यविजय' आपकी प्रथम काव्यकृति है, जो एक सफल खण्डकाव्य है । भारत के अतीत इतिहास के वीर पुरुष चन्द्रगुप्त मौर्य की वीरता का गायन करके कवि भारतवासियों में स्वदेशानुराग की जागृति जगाना

१- जयद्रथ वध - गुप्त जी, पृ० ५-६.

२- महाभारत - द्रोणपर्व, ३५।१२-१६.

चाहते हैं । अंग्रेजों के शासनकाल में मोह निद्रा लीन हुए भारतीयों को अतीत की गौरव गरिमा का वर्णन सुनाकर स्वदेश-प्रेम की ओर उन्मुख करना ही कवि का लक्ष्य है ।

मौर्यसाम्राज्य के वीर सम्राट चन्द्रगुप्त की वीरता का चित्रण प्रस्तुत काव्य में हुआ है । कथावस्तु तीन सर्गों में वर्णित है । प्रथम सर्ग में मौर्यसम्राट चन्द्रगुप्त के शासनकाल में मौर्यसाम्राज्य के अनन्त वैभव का उज्ज्वल चित्रण है । जनता की श्लाघनीय नैतिक भावना तथा भारत के सांस्कृतिक गौरव एवं शुचिबल का भी अच्छा वर्णन हुआ है । द्वितीय सर्ग में सेल्यूकस की सेना के साथ चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना के युद्ध का वर्णन है । अन्त में चन्द्रगुप्त की जीत का चित्रण है । तृतीय सर्ग में सेल्यूकस की कन्या एथेना का सौन्दर्य वर्णन है और चन्द्रगुप्त मौर्य के उसकी ओर आकर्षित होने की कथा कही गयी है । अन्त में चन्द्रगुप्त द्वारा एथेना के वरण करने तथा उनका कन्धार एवं हिरातादिक प्रदेश पर विजय पाने का वर्णन है ।

स्वातंत्र्य पूर्व भारतीय देशस्नेही कवियों के मन अंग्रेजी शासन के प्रति असंतोष के कारण क्षुब्ध रहे थे । वे खुल्लमखुल्ला उसका उल्लेख न कर सकते थे । वे चुप रह भी न पाते थे । ऐसे कवि जब अतीत भारत के गरिमामय इतिहास की ओर मुड़े, वीर ऐसे वीरों को लेकर संदृप्त हुए जिनके चित्रण भारतीयों में देशप्रेम व वीरता की भावना जगाने में पर्याप्त थे । "यदि सौभाग्य से किसी जाति का अतीत गौरव-पूर्ण हो और वह उस पर अभिमान करे तो उसका भविष्यत् भी गौरवपूर्ण हो सकता है । .... . यदि आज हम अपने पूर्वजों के कृत्यों पर गर्व कर सकते हैं तो कौन नहीं कह सकता कि एक दिन- चाहे वह दिन दूर ही क्यों न हो - स्वयं भी उनका-सा गौरव प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करके उनके सच्चे वंशज कहलाने की भी चेष्टा कर सकते हैं ।"[1] इसी महान् उद्देश्य से सियारामशरण गुप्त जी ने प्रस्तुत खण्डकाव्य का प्रणयन किया है । "कथाकाव्य के माध्यम से राष्ट्रीय भावना का प्रकाशन सर्वप्रथम 'मौर्यविजय' में हुआ ।"[2]

१- 'मौर्यविजय' काव्य की भूमिका - सियारामशरण गुप्त, पृ० ४

२- सियारामशरण गुप्त : व्यक्तित्व और कृतित्व - डा० शिवप्रसाद मिश्र, पृ० ७५.

'मौर्यविजय' वीर भावना प्रधान काव्य है जिसमें द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता द्रष्टव्य है । ऐतिहासिक कथानक के आधार पर लिखे जाने के कारण यह ऐतिहासिक खण्ड-काव्य है । डा० नगेन्द्र ने 'मौर्यविजय' को भी मैथिलीशरण गुप्त जी के प्रभाव में लिखा हुआ कवि का आरंभिक काव्य-प्रयोग बताया है ।[१] यह एक सफल खण्डकाव्य है जिसका प्रारंभ 'मंगलाचरण' से होता है ।

हे राघवारि रघुवंश-रवि,
    विश्वेश्वर, कल्याणधाम,
हैं हम भी जग-संग्राम में
    हमें अभय करके विजय ।।

भगवान् श्रीरामचन्द्र जी की यह स्तुति कवि की वैष्णवभावना का परिचायक है । तीन सर्गों में होकर चलने वाली काव्यवस्तु प्रवाहशील है । तत्समप्रधान भाषा शैली का अधिक प्रयोग हुआ है । अलंकरण शैली से बचने का प्रयास काव्य में द्रष्टव्य है । भाषा शैली की सरलता व रोचकता काव्यशैली की प्रमुख विशेषताएं हैं छप्पय छन्द में प्रस्तुत काव्य का प्रणयन हुआ है ।

प्रेमपथिक (जयशंकरप्रसाद)

प्रसाद के ब्रजभाषा में लिखित 'प्रेमपथिक' का परिवर्तित एवं परिवर्धित खड़ी बोली संस्करण सन् १९१४ में प्रकाशित हुआ । प्रणय भावनाओं से ओतप्रोत एक नवीन सुन्दर खण्डकाव्य है यह ।

निराशप्रेम के अवसाद में एक प्रेमी पथ-गामी बनकर निकला । प्रकृति की मनोहारी छटा को निहार कर आगे बढ़ने वाला पथिक नदी तट पर एक सुरम्य झोंपड़ी देख लेता है । वहीं एक तापसी उसका स्वागत करती है तथा उसके इस प्रकार पथिक बनकर निकलने का कारण पूछ लेती है । यहीं से कथा की पूर्वपीठिका (   ) होती है जिसमें पथिक अपनी जीवनगाथा सुनाता है । पथिक आनन्द नगर का निवासी था । पिता

१- आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ - डा० नगेन्द्र - पृ० ४५.

के देहान्त के उपरांत उसका लालन-पालन पिता के एक मित्र के घर हुआ जहाँ उस का परिचय एक सुन्दरी भोली-भाली बाला चमेली (पुतली) के साथ हुआ । प्रकृति की सुरम्य गोदी में खेले कूदे एक साथ बढ़े उनके मन परस्पर खिंच जाते हैं । पर विधि की विडम्बना से बाला की शादी एक दूसरे अपरिचित व्यक्ति के साथ हो जाती है । तभी से उस प्रेमी अल्हड़ किशोर का मन निराशा एवं अवसाद से भर जाता है । एक दिन उस निराश प्रेमी के सम्मुख स्वयं प्रेम अवतरित होकर उसे प्रेम के त्याग एवं बलिदान के महान् आदर्श का सन्देश सुनाता है । तब से वह अपने आनन्द पथ का उन्मुक्त पथिक बन जाता है । यह करुण कहानी सुन लेने पर तापसी उससे पूछती है कि तुम अपनी प्रेमिका चमेली को पहचानते हो कि नहीं । पथिक अपनी बिछुड़ी हुई प्रेमिका को पहचान लेता है और दोनों पुनः मिल जाते हैं । वह रमणी भी दैवगति से पति प्रेम वंचिता तथा विधवा हुई थी और तापसी का जीवन व्यतीत कर रही थी । दोनों के इस अकस्मात् मिलन का आध्यात्मिक स्तर पर चित्रण करके कवि ने प्रेम को दिव्य धरातल पर प्रतिष्ठित किया है ।

प्रस्तुत काव्य पर श्रीधर पाठक के एकांतवासी योगी का अमिट प्रभाव है । काव्य-वस्तु, वातावरण, कौतूहल आदि का चित्रण 'एकांतवासी योगी' से अनुप्राणित है । इसकी कथावस्तु पूर्णरूपेण पाठक जी की कथावस्तु से मेल खाती है । दोनों में प्रेमी-प्रेमिका के अकस्मात् दैवगति से मिलन का एवं प्रेम के दिव्य रूप का वर्णन है । काव्य के पात्रों में एक आश्रयदाता होता है तथा दूसरा प्रेम पथ का पथिक । दोनों में पथिक अपने पथिक बनने की प्रेम कहानी सुनाता है और आखिर यह प्रकट हो जाता है कि श्रोता और कोई नहीं, उसकी ही प्रिया है जिसके लिए वह पथिक बनकर निकलता है ।

'एकांतवासी योगी' की पाश्चात्य कथावस्तु में भारतीयता लाने के लिए प्रसाद जी ने काव्य में यत्र-तत्र परिवर्तन किया है। भारत में पथिकों व शरणागतों को शरण गृह-स्वामिनियाँ ही देती हैं । 'एकांतवासी योगी' में स्त्री पुरुष वेष में प्रेमी की खोज में निकलती है । प्रेमपथिक में आश्रयदाता नारी है जो पथिक को अपने आश्रम में आश्रय प्रदान करती है । 'एकांतवासी योगी' में प्रणय का आरंभ नारी की अपूर्व रूप छवि के मोह में

होता है तो प्रेमपथिक में प्रणय का विकास साहचर्य के कारण होता है। इसी भाँति एकांतवासी योगी में प्रणय की असफलता नायिका की उपेक्षा के कारण होता है तो प्रसाद के काव्य में पारिवारिक समस्याएं -- बाला की शादी के मामले में माँ-बाप का हस्तक्षेप ही -- इसका कारण बनता है जो भारतीयता के अनुरूप हुआ है।

पाश्चात्य काव्य को अनुरूप ढालने का प्रसाद जी का प्रयास श्लाघनीय है। प्रेमपथिक का बाह्य ढांचा पाश्चात्य रचना एकांतवासी योगी, गोल्डस्मिथ से गृहीत है किंतु उसकी अन्तरात्मा कवि के अपने युग, समाज और जीवन की अनुभूतियों से अनुप्राणित है।[1]

जहाँ ब्रजभाषा 'प्रेमपथिक' की कथावस्तु अत्यन्त क्षीण है वहाँ खड़ीबोली 'प्रेमपथिक' की कथावस्तु प्रौढ़ एवं स्थूल है। पहले में संपूर्ण काव्य में मूर्तिमान प्रेम के अवतरित होकर प्रेम-पथ पथिक को प्रेम का अनोखी तत्व समझाने का वर्णन है। खड़ी बोली काव्य में जबकि प्रेमी-प्रेमिका का बिछुड़ना होता है, उस अवसर पर प्रेम प्रकट होता है तथा उसे प्रेम-पथ का महत्व सिखा देता है। ब्रजभाषा खण्डकाव्य से अधिक पुष्टि एवं प्रौढ़ि खड़ीबोली 'प्रेमपथिक' की कथावस्तु को प्राप्त है।

काव्यत्व की दृष्टि से प्रेमपथिक अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि की रचना है। इसमें प्रेमानुभूतियों का चित्रण इतना मार्मिक हुआ है कि ऐसा लगता है कि कवि की स्वानुभूतियां ही काव्य में स्वत: उच्छ्वसित हुई हैं। इसमें सांसारिक स्थूल प्रेम की भर्त्सना तथा निष्काम प्रेम की महिमा का गायन हुआ है। प्रेम की महती भावना को व्यक्तिगत धरातल से ऊपर उठाकर विश्वव्यापी धरातल पर प्रतिष्ठित करने का कार्य भी प्रसाद जी ने किया है। प्रकृति का सुन्दर वर्णन तथा प्रेम का मानवीकृत रूप प्रस्तुत काव्य में प्रकट है। जीवन के एक महत्वपूर्ण पक्ष को आधार बनाकर निर्मित यह खण्डकाव्य सफल निकला है।

१- आधुनिक साहित्य और साहित्यकार - डा० गणपति चन्द्र गुप्त - पृ० ५६.

द्रौपदी-चीर-हरण (लोकेश्वर त्रिपाठी)

लोकेश्वर त्रिपाठी जी कृत खण्डकाव्य `द्रौपदी-चीर-हरण` सन् १६१४ ई० में प्रकाशित हुआ । इसमें `महाभारत` के सभापर्व में वर्णित द्रौपदी के चीर हरण प्रसंग का आख्यान हुआ है । द्यूत में पराजित पांडवों को अपने राजपाट के साथ धर्मपत्नी द्रौपदी से भी हाथ धोना पड़ता है । भरी सभा में कौरव उसका उपहास करते हैं । तथा दु:शासन उसके कपड़े खींच कर उसका अपमान करता है । नि:सहाया नारी भगवान कृष्ण का स्मरण करती है । कृष्ण उसके वस्त्र को कभी भी समाप्त होने वाला न करके, नारी अपमान से उसकी रक्षा करते हैं ।

प्रस्तुत खण्डकाव्य के प्रारंभ में मंगलाचरण की योजना हुई है तथा कवि परिचय भी दिया गया है । वार्ता शैली में यह काव्य विरचित है। दुर्योधन के पक्ष के अत्याचारों को प्रकट करके पांडवों के प्रति सहानुभूति का भाव व्यंजित करने का प्रयास काव्य में हुआ है । नारी के लाज की रक्षा का मार्मिक वर्णन भी इसमें प्राप्त है । द्रौपदी को मुख्य पात्र बनाकर उसके जीवन के एक महत्वपूर्ण पक्ष का अंकन करने में यह खण्डकाव्य सफल बना है ।

मिलन (रामनरेश त्रिपाठी)

हिन्दी की द्विवेदीयुगीन काव्य-परम्परा में कविवर रामनरेश त्रिपाठी का महत्वपूर्ण स्थान है । स्वच्छन्द भावधारा के प्रवेश की प्रारंभिक पृष्ठभूमि में त्रिपाठी जी प्रस्तुत काव्यधारा की विशेषताओं से प्रभावित होकर काव्य जगत के प्रांगण में अवतरित हुए । अपनी प्रखर प्रतिभा द्वारा हिन्दी साहित्य के सभी अंगों पर आपने अपनी सफल लेखनी चलायी । हिन्दी के खण्डकाव्य क्षेत्र को भी आपने अपने मनोज्ञ काव्यों से सजाया । आपके प्रख्यात तीन खण्डकाव्य हैं -- मिलन, पथिक तथा स्वप्न -- जो हिन्दीसाहित्य की गौरवनिधियां हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के शब्दों में -- `काव्य के क्षेत्र में जिस स्वाभाविक स्वच्छन्दता का आभास पं० श्रीधर पाठक ने दिया था, उसके पथ पर चलने वाले

द्वितीय उत्थान में त्रिपाठी जी दिखायी पड़े । मिलन, पथिक और स्वप्न नामक इनके तीनों खण्डकाव्यों में इनकी कल्पना ऐसे मर्मपथ पर चली है जिस पर मनुष्य मात्र का हृदय स्वभावतः ढलता आया है । ऐतिहासिक या पौराणिक कथाओं के भीतर न बंधकर अपनी भावना के अनुकूल स्वच्छन्द संचरण के लिए कवि ने नूतन कथाओं की उद्भावना की है । कल्पित आख्यानों की ओर यह विशेष झुकाव स्वच्छन्द मार्ग की अभिलाषा सूचित करता है ।"[1]

हिन्दी की आधुनिक खण्डकाव्य-परम्परा में 'मिलन' काव्य का स्थान बेजोड़ है । सन् १९१७ में प्रकाशित प्रस्तुत खण्डकाव्य का अब तक बीसों संस्करण निकल चुके हैं जो इसकी लोकप्रियता का स्पष्ट परिचायक है । इस खण्डकाव्य के पांच सर्ग हैं । काव्य का प्रारंभ द्रुमलतावितानों के बीच सज्जित एक कुटी में रहने वाले युगमिथुनों -- आनंदकुमार एवं विजया -- के मधुर वार्तालाप से होता है । देश सेवा के महान् आदर्श से प्रेरित युगमिथुन देश सेवा के लिए कमर कस कर विश्व की विशाल रंगभूमि में उतर पड़ते हैं । पर विधि की गति से नदी पार करते समय उनकी नाव डूब जाती है ।

दूसरे सर्ग में एक मुनि द्वारा काव्य नायिका विजया को जीवन दान देने का वर्णन है । विजया से सब बातें ज्ञात करके तीसरे सर्ग में मुनि बिछुड़े हुए युवक को भी खोज निकालते हैं तथा उससे बीते हुए जीवन की संपूर्ण गाथा सुन लेते हैं । युवक का पिता मिलन नगर का निवासी था । एक बार राजा का क्रोध पात्र बन गया तथा अपने इकलौते बेटे को एक मित्र मुनि के पास सौंप कर देश सेवा के लिए निकलता है । मुनि उसका ब्याह अपनी कुटिया में पली एक सुन्दरी लड़की से करा देता है । इसके बाद पति-पत्नी के बिछुड़न की कथा भी यह कह सुनाता है । यह कथा सुनकर पितृहृदय की मानवीय दुर्बलता को दबाकर मुनि उसे देश-सेवा के लिए -- महान् आदर्श की ओर उन्मुख कर देता है तथा पुनर्मिलन का संकेत भी देता है ।

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य शुक्ल - १६ वाँ संस्क०, पृ० ५९९-६००.

चौथे सर्ग में स्वतंत्रता के महान् आदर्श की स्थापना के लिए प्रतिश्रुत तीनों को पाते हैं -- मुनि, आनन्द तथा विजया को । इनके द्वारा आयोजित भयानक विप्लव में शासन सत्ता पराजित हो जाती है । लेकिन युवक की जीवन रक्षा करते हुए मुनि को घातक घाव लगता है तथा युद्धभूमि में ही वे अपने प्राणों का विसर्जन कर देते हैं । इसी सर्ग के अंत में युवक के जीवन रक्षक मुनि अपने को उसके पिता होने के रहस्य का उद्घाटन करते हैं । अंतिम सर्ग -- जो बहुत ही छोटा है, केवल तीन छन्दों से निर्मित होता है -- में युवमिथुनों के पुनः मिलन का वर्णन है ।

त्रिपाठी जी का यह खण्डकाव्य आपकी राष्ट्रीय चेतना का संवाहक है जिसका कारण तत्कालीन भारतीय परिस्थितियाँ हैं । त्रिपाठी जी के युग में भारतमाता विदेशियों की गुलामी की शृंखलाओं में जकड़कर मुक्ति के लिए कराह रही थी । ऐसे अवसर पर भारतीय जनता की राष्ट्रीय चेतना को जगाने का अपने खण्डकाव्य के माध्यम से कविवर त्रिपाठी जी ने सफल प्रयास किया । `मिलन` खण्डकाव्य में विदेशी शासक के अत्याचारों तथा उन अत्याचारों से पीड़ित प्रजा की दीन दशा का वर्णन किया गया है । ये बातें स्वतंत्रतापूर्व भारत पर भी लागू हो सकती हैं । इसके बाद काव्यनायक आनन्दकुमार तथा उनकी प्रिया विजया का देश भर में भ्रमण कर देश-वासियों में जागृति उत्पन्न करने का चित्रण है । यह हमें भारत की आजादी के लिए प्रयत्नशील महात्मागांधी तथा अन्य देशप्रेमी नेताओं की याद दिलाती है । जनता में विद्रोह एवं राष्ट्रीय भावना के जागृत होने पर राजा प्रजा के बीच युद्ध होता है तथा उस बीच काव्यनायक के पिता मुनि का प्राणदान होता है एवं विदेशी भाग जाते हैं । इस प्रकार देश को जो जय सन् १९४७ में मिली, उसकी कल्पना त्रिपाठी जी ने अपनी अंतश्चेतना से सन् १९१८ में ही कर ली थी ।[१] वस्तुतः देशभक्ति का उत्कृष्टतम रूप प्रस्तुत काव्य में चित्रित है ।

१- आधुनिक कवि : विश्वंभर मानव.

भावपक्ष एवं कलापक्ष का मणिकांचन संयोग प्रस्तुत खण्डकाव्य में द्रष्टव्य है । कथानक कवि के कल्पनावैभव की उपज है । प्रकृति का मनोहारी वर्णन काव्य को अधिक मनोरम बनाता है । प्रस्तुत रूप में मुख्यतया करुण तथा अंग रूप में शृंगार, रौद्र, व वीर रसों की अभिव्यक्ति है । भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति आपने सुन्दरतम शैली में की है । आपकी खड़ीबोली भाषा भावाभिव्यक्ति में सर्वथा सक्षम है । भाषा शैली को मनोरम बनाने के लिए शब्द एवं अलंकारों का प्रयोग भी आपने किया है । सरसी छन्द का सुन्दर निर्वाह काव्य में आद्यंत हुआ है ।

खण्डकाव्य कला की कसौटी पर त्रिपाठी जी का यह काव्य खरा उतरता है । कथानक का आधार लिये इस काव्य में भाव और छन्द शृंखलाबद्ध हैं और उनमें तारतम्य भी है । पाँच सर्गों में कथा वर्णित है । काव्यकलेवर लघु है । आदि से अंत तक एक ही छन्द प्रयुक्त हुआ है । शीर्षक भी संक्षिप्त तथा सार्थक हैं । जीवन के एक मार्मिक पक्ष की अभिव्यक्ति ही काव्य में हुई है । प्रमुख कथा के साथ अन्य प्रासंगिक कथाओं का नितांत अभाव भी है । देश सेवा के महान् आदर्श को लक्ष्य करके ही यह खण्डकाव्य विरचित हुआ है ।

किसान (मैथिलीशरण गुप्त)

सन् १९१७ ई० में गुप्त के काव्य `किसान' का प्रथम संस्करण निकला । भारतीय कृषक जीवन की करुणगाथा ही प्रस्तुत काव्य में प्रस्तुत है । कल्लू एक कृषक बालक था, जो प्रायः भैंसों को चराकर जीवनयापन करता था । बालक जवान हुआ । एक दिन गाय चराते समय उसने किसी की चिल्लाहट सुन ली । जाकर देखा तो एक लड़की पर एक हिंस्र भेड़िये का आक्रमण हो रहा है । कल्लू ने उस लड़की की रक्षा की तथा उसे घर पहुँचा दिया । वह लड़की भी एक किसान बालिका थी -- कुलमन्ती नाम था । अपनी रक्षा करने वाले के प्रति उत्पन्न कृतज्ञता ने बालिका को युवक के सुख दुःख की संगिनी बनाया । उनका जीवन कष्टपूर्ण हो गया । साहू, महाजन तथा जमींदार के पंजे में पड़कर भी पति-पत्नी पिसने लगे । अंत में वहाँ से ऊबकर वे फिजी पहुँचे तथा कुली का काम करने लगे ।

फिर भी किसान का जीवन नरकतुल्य ही बना रहा । एक दिन एक गोरे ओवरसियर ने कुलवंती पर जबरदस्ती की, तो लाज रखने के क्रम में वह दुनिया से चल बसी । किसान के दुःख की सीमा नहीं रही । इस दुर्घटना की खबर भारत पहुंची तो किसानों के सुधार की आयोजनायें होने लगीं । किसान स्वतंत्र होकर भारत लौटे तथा ब्रिटिश सरकार की सेना में भर्ती हुए । ब्रिटिश स्वार्थों की सेवा में टिगरीस नदी के तट पर जो युद्ध हुआ, उसमें किसान घायल हो गया । वीरता के पुरस्कार के रूप में अपनी छाती पर चमकने वाले 'विक्टोरिया-क्रास' को देख, सानंद उसने अंतिम साँस ली ।

एक छोटी सी काल्पनिक कथावस्तु को आधार बनाकर कवि ने 'किसान' खण्ड-काव्य का प्रणयन किया है । एक भारतीय गरीब किसान के जीवन का जीता जागता चित्र काव्य में उपस्थित है । किसानों के प्रति सहानुभूति ही काव्य प्रणयन का उद्देश्य रहा है । आत्मकथात्मक शैली में यह खण्डकाव्य विरचित है । भावपक्ष की भाँति प्रस्तुत खण्डकाव्य का कलापक्ष भी खूब निखरा हुआ है । काव्य कथा सर्गों में विभाजित न होकर विभिन्न शीर्षकों में विभक्त है । 'करुणा' रस का पूर्ण परिपाक प्रस्तुत खंडकाव्य में हुआ है । भाषा-शैली अलंकारों के उपयुक्त प्रयोग के कारण सीधी-सादी तथा पर्याप्त मंजी हुई है ।

विकट भट (मैथिलीशरण गुप्त जी)

गुप्त जी का खण्डकाव्य "विकट भट" सन् १९२८ ई० में प्रकाशित हुआ । इसमें एक विकट भट के क्षात्र तेज एवं वीरत्व का उज्ज्वल वर्णन प्रस्तुत हुआ है । जोधपुर के राजा विजयसिंह ने अपने एक प्रतिष्ठित सरदार से राजदरबार में बार-बार प्रश्न किया कि —

" ...." देवीसिंह जी,
कहीं यदि रूठ जाय मुझ से तो क्या करें ?"

सरदार ने कई बार इस उलझे हुए सवाल को टाल दिया लेकिन राजा के बारंबार आग्रह करने पर उसने खुल्लमखुल्ला बता दिया कि —

"पृथ्वीनाथ, मैं जो रुठ जाऊँ कहा वीर ने
जोधपुर की तो फिर बात ही क्या, वह तो
रहता है मेरी कटारी की पर्तली में ही
मैं यों नवकोटि मारवाड़ को उलट दूं।"

सरदार देवीसिंह को अपने ही दिन अपने इस वीरतापूर्ण जवाब के लिए बलिदान होना पड़ा। उसके पुत्र को भी जल्दी ही स्वर्ग-यात्रा करनी पड़ी। अन्त में रह गये देवीसिंह का एक बारह वर्ष का पौत्र सबलसिंह और उसकी विधवा माता। राजा की ओर से उसे भी दरबार में हाज़िर होने की आज्ञा हुई। माता से विदा लेकर निर्भय होकर वीर सबलसिंह दरबार पहुँचा तथा वीरता एवं गौरव के साथ राजा के प्रश्नों का उत्तर दिया। अपने वीर सरदार के अभाव में अब राजा पछताने लगे थे। राज्य भर में आक्रमणकारी अब सिर उठाने लगे थे। राजा का भाव भी अब अच्छा हो गया। सबलसिंह के गौरवपूर्ण प्रश्नोत्तरों को सुनकर राजा ने गद्दी से उठकर उसे अपने गले से लगा लिया तथा उसे अपना सरदार बनाया।

प्रस्तुत काव्य में गुप्त जी ने एक भारतीय क्षात्र वीर की शूरवीरता का वर्णन किया है। एक क्षात्र वंश की तीन पीढ़ियों की कथा इस छोटी सी कथा के चारों ओर लिपटी है। लेकिन घटनाओं के अनेक पहलुओं के अंकन न होने के कारण, काव्य में अन्विति तथा प्रसंग-विन्यास की कड़ी कहीं टूटती नहीं। नाटकीयता का अद्भुत समावेश काव्य का एक विशिष्ट गुण है। विवरणात्मक शैली में यह खण्डकाव्य अधिक रोचक है।

महाराणा का महत्त्व (जयशंकर प्रसाद)

महाकवि जयशंकरप्रसाद जी का एक ऐतिहासिक खण्डकाव्य है महाराणा का महत्त्व। यह काव्य सन् १९१८ ई० में प्रकाशित हुआ। इस लघु खण्डकाव्य में महाराणा प्रताप की असीम उदारता का मार्मिक चित्रण हुआ है। एक बार राणा प्रताप की सेना के लोग एक मुस्लिम नारी को बन्दी बनाकर राणा के सम्मुख उपस्थित करते हैं। यद्यपि यह नारी उसी अब्दुल रहीम खानखाना की पत्नी थी जो उन पर आक्रमण करने आया था,

पर राणा उसे सम्मानपूर्वक अपने पति के पास लौटा देते हैं । यही कथानक प्रस्तुत काव्य में वर्णित है ।

सूर्यास्त की प्रकृति के मनोहारी चित्रण से काव्य का प्रारम्भ होता है । अर्बुद-गिरि की छाया में एक शिविका को घेरे हुए यवन सैनिक जा रहे हैं । इसी बीच कुँवर अमर-सिंह अपने वीर राजपूत सैनिकों को लेकर आक्रमण करते हैं । कुछ सैनिकों को घायल करते हैं तथा शेष बन्दी बनाये जाते हैं । साथ ही शिविका में जाने वाली सेनापति अब्दुल रहीम खानखाना की सुन्दरी बेगम को भी रोक लेते हैं । महाराणा प्रतापसिंह को इसकी सूचना मिलती है तो वे एकदम क्रुद्ध एवं दुःखी हो जाते हैं । एक स्त्री पर आतंक कर लेना - चाहे वह शत्रु की ही स्त्री क्यों न हो -- उन्हें नैतिक दृष्टि से उचित नहीं जँचता । तुरन्त अपने सैनिकों को वे यह आदेश दे देते हैं कि बेगम को आदरपूर्वक अब्दुल खानखाना के पास भेज दिया जाय ।

इस घटना का जो अमिट प्रभाव रहीम खानखाना पर पड़ता है उसका भी काव्य में चित्रण हुआ है । भारतीय संस्कृति के प्रबल उपासक प्रसाद जी प्रस्तुत खंडकाव्य में भी भारतीय संस्कृति की महानता का यशोगान करते हैं । युद्ध तथा प्रेम में जो कुछ भी हो सकता है -- नैतिकता, अनैतिकता, न्याय अन्याय की कुछ परवाह नहीं करनी है -- इस धारणा को कवि ने निर्मूल कर दिया है । भारतीय राजपूत वीर ऐसे हैं जो भारतीय महती संस्कृति के पालक हैं । स्त्रियों का वे आदर सम्मान करते हैं, स्त्री उनके लिए देवी के समान पूज्या है । महाराणा प्रताप इसके ज्वलंत प्रतीक हैं जिन्होंने अपने आचरण द्वारा भारतीय संस्कृति की गरिमा की रक्षा की ।

ऐतिहासिक कथावस्तु को आधार बनाकर निर्मित इस खंडकाव्य में महाराणा प्रताप के चरित्र के एक मार्मिक पक्ष का सजीव उद्घाटन हुआ है । प्रकृति के मनोहारी वर्णन तथा बीच-बीच के संवादों के कारण काव्य मनोज्ञ एवं गतिशील बन पड़ा है । कला की कसौटी

पर भी यह खंडकाव्य खरा उतरता है। इक्कीस मात्रा के अरिल्ल छन्द में यह मर्मस्पर्शी काव्य प्रणीत हुआ है। काव्य शैली भी अत्यन्त मनोरम है।

अनाथ (सियारामशरण गुप्त)

सन् १९१८ में सियारामशरण गुप्त जी का खण्डकाव्य 'अनाथ' प्रकाशित हुआ। एक अनाथ भारतीय किसान की करुण कथा ही प्रस्तुत खण्डकाव्य का विषय है। हमारे देश की घोर दरिद्रता तथा सामाजिक कुरीतियों ने कवि के कोमल हृदय को व्यथित किया है। अपने व्यथित हृदय की मार्मिक अभिव्यक्ति ही 'अनाथ' में हुई है। मोहन एक गरीब किसान है। उसका बेटा मुरलीधर बीमार पड़ा हुआ है। घर में भोजन नहीं, बेटे के उपचार करने के लिए आवश्यक पैसे भी नहीं। मुरलीधर का छोटा भाई भूख के कारण तड़प-तड़प कर रोता है। मोहन अपने बच्चों को कुछ खाने देने के लिए, एक लोटा गिरवी रखने जाता है। लौटते समय मार्ग में अपने पुत्र के लिए भुट्टा उठाकर लाना चाहता है। उस समय चौकीदार उसे दारोगा की बेगारी के लिए पकड़ लेता है। वहाँ उसे दिन भर पंखा झलाना पड़ता है। दारोगा के कुत्ते को भरपेट भोजन करते देखकर मोहन को अपने भूखे पुत्र की तथा उसके करुण क्रन्दन की याद आती है। शाम को जमींदार के नौकर उसे पकड़कर ले जाते हैं। वहाँ से घर लौटते समय मार्ग में पुत्र के मरने तथा आकुल के पठान द्वारा पत्नी को कर्ज न चुकाने के बदले अपने घर पर काम करने के लिए लिया जाने के दुःखद समाचार सुनता है। वह दुःख दग्ध होकर ठोकर खाकर गिर पड़ता है।

प्रस्तुत खण्डकाव्य में एक निर्धन ग्रामीण परिवार का परम कारुणिक चित्रण हुआ है। समाज के शोषक वर्ग-जमींदारों - की क्रूरता का भी नग्न चित्र काव्य में उपस्थित है। समाज की निष्ठुरता एवं हृदयहीनता को भी कवि ने अपने व्यंग्य का विषय बनाया है। युग चेतना की अनुपम झाँकी से युक्त इस खण्डकाव्य में गांधीवादी विचारधारा का सुस्पष्ट प्रभाव है। काव्य में वर्णनात्मक शैली अधिक है तथा उसका सरल यथार्थ चित्र उपस्थित

हुआ है कि पाठकों के सम्मुख शब्द-चित्र से प्रस्तुत होते हैं। द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक शैली का यह खण्डकाव्य कला की दृष्टि से भी सफल है।

अभिमन्यु का आत्मबलिदान (रूपनारायण वर्मा)

'महाभारत' के अभिमन्यु प्रसंग के आधार पर रूपनारायण वर्मा जी ने 'अभिमन्यु का आत्मबलिदान' नामक खण्डकाव्य का प्रणयन किया। यह काव्य सन् १९१८ ई० में प्रकाश में आया। पांडव पक्ष के वीर अर्जुन पुत्र अभिमन्यु के चक्रव्यूह भेदन तथा आत्म त्याग की कथा ही इस में वर्णित है। कुरुक्षेत्र युद्ध के तेरहवें दिन चक्रव्यूह युद्ध की आयोजना होती है। आचार्य द्रोण द्वारा निर्मित चक्रव्यूह भेदन की कला पाण्डवपक्ष के केवल दो ही वीर जानते हैं -- कृष्ण तथा अर्जुन। लेकिन इस से वे संबन्धित लाये गये थे। कौरवों के मुँह से चक्रव्यूह भेदन की चुनौती सुनकर पांडव पक्ष के सभी वीर असमंजस में पड़ जाते हैं। जल्दी ही अर्जुन पुत्र सोलहवर्षीय वीर बालक अभिमन्यु चक्रव्यूह भेदन के लिए जाने को तैयार होता है। अपनी माता व प्रिया से विदा लेकर वह चक्रव्यूह भेदन के लिए युद्ध क्षेत्र चला जाता है। चक्रव्यूह के गर्भ द्वार तक शत्रुओं को मार गिराकर वह प्रवेश करता है। गर्भ द्वार पर सभी वीर उसे घेर लेते हैं तथा उसके हाथ से शस्त्र नीचे गिर पड़ता है। फिर भी निडर होकर वह बहुत समय तक शत्रुओं का सामना करता है तथा अन्त में लड़ता-लड़ता वह वीर कुमार वीरगति को प्राप्त करता है।

अभिमन्यु के साहस व कर्तव्य पालन का उदात्त चित्र इस काव्य में प्रस्तुत हुआ है। वार्य गौरव के दृष्टांत के रूप में अभिमन्यु की वीर कथा यहाँ चित्रित हुई है। काव्य के निवेदन में कवि ने यह स्पष्ट किया है --

> "..... वार्य गौरव मान का बस एक यही दृष्टांत है।
> उद्विग्न मन को कर्म पथ पर कर दिखाता शांत है।"[१]

१- अभिमन्यु का आत्म बलिदान - रूपनारायण वर्मा - निवेदन, पृ० १.

अभिमन्यु के उत्तरा से विदा, चक्रव्यूह युद्ध तथा उसकी वीर मृत्यु व उत्तरा विलाप जैसे प्रसंगों का मार्मिक वर्णन काव्य में हुआ है । समस्त काव्य गुप्तनिवास और मनुष्य, महाभारत का प्रारम्भ, रणरात्रि में भीष्म पितामह, चक्रव्यूह और अभिमन्यु का रणप्रस्थान, चक्रव्यूह संग्राम जैसे शीर्षकों में विभाजित है । आर्य-वीर के कर्तव्य पालन का खाका खींचना का काव्य का लक्ष्य है ।

पथिक (श्री रामनरेश त्रिपाठी)

श्री रामनरेश त्रिपाठी जी का एक अत्यन्त सुन्दर खण्डकाव्य है 'पथिक'। इसका प्रकाशन सन् १९२० ई० में हुआ । अब तक इसके छप्पन संस्करण निकल चुके हैं । यह कई भारतीय विश्वविद्यालयों का पाठ्य ग्रन्थ हो चुका है । "स्वतंत्र जर्मनी के विश्वविद्यालय के हिंदी पाठ्यक्रम में भी स्थान पाता रहा । कविरत्न मधुकर शास्त्री द्वारा इसका संस्कृत पद्यानुवाद 'पथिक काव्यम्' भी इसके काव्य माधुर्य का परिचायक है ।"[१] पांच सर्गों से युक्त प्रस्तुत खण्डकाव्य का प्रारम्भ अरुणोदय के सुन्दर चित्रण से होता है । ऐसी रमणीय वेला में सागर तट पर प्रकृति की मनोहर छटा को निहार कर बैठने वाले पथिक की खोज में उसकी विरहिणी पत्नी आ जाती है । वह उसे घर लौटा लेने की चेष्टा करती है, पर पथिक मानने वाले न होते । प्रकृति के अनन्य पुजारी पथिक प्रकृति के कमनीय प्रांगण में ही खुशी खुशी विहार करने की अभिलाषा प्रकट करके अपनी प्रिया को उस समुद्र तट पर छोड़कर वन की ओर प्रस्थान करता है ।

दूसरे सर्ग में सायंकाल की सुरम्य छटा को निहारते हुए बैठने वाले पथिक की भेंट एक साधु से होती है । साधु उसकी पलायन वृत्ति को धिक्कारता है तथा उसे संसार के रंगमंच पर जाकर कर्म करने की प्रेरणा देता है । तीसरे सर्ग में एक तरफ पथिक के कर्मठ जीवन का चित्रण है तो दूसरी तरफ स्वदेश की दुरवस्था का कारुणिक चित्र भी । स्वदेश में प्रजा

१- रामनरेश त्रिपाठी - व्यक्तित्व और कृतित्व - रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, पृ० ५८

की पीड़ा देख उसका दिल भर जाता है । प्रजा तथा स्वदेश के सुधार के लिए राजा से प्रार्थना करने पथिक राज-सभा जाता है तथा प्रजा के दुःख की करुण गाथा सुनाकर राजा से नीति-पूर्ण शासन व्यवस्था की माँग करता है । पथिक की बातें सुनकर आग-बबूला हो, राजा उसे राजसभा से निष्कासित कर देता है । परिणामतः पथिक राजा से असहयोग आंदोलन करने की ठान लेता है ।

चौथे सर्ग के प्रारम्भ में पथिक-पत्नी की विरह व्याकुलता का मार्मिक चित्रण है । पथिक के वन गमन के उपरान्त साधु के आश्वासन पाकर वह घर लौट आयी थी । आंदोलन के जड़ पकड़ लेने पर राजा पथिक को मृत्युदण्ड देने की घोषणा करता है । एक यात्री दल के मुँह से यह बात सुनकर पत्नी दौड़े-दौड़े राज दरबार पहुँच जाती है । वहाँ पथिक को पिलाने के लिए जो विष रखा हुआ था, उसे वह स्वयं पी लेती है । राजाज्ञा पर राज-दूत पथिक-पुत्र को भी मार डालते हैं । राजा की क्रूरता पर क्रुद्ध जनता प्रतिहिंसा के लिए तत्पर होती है । पर पथिक अहिंसा का उपदेश देकर उन्हें विरत करता है तथा कहता है कि स्वदेश की रक्षा के लिए प्राणों की बलि देनी चाहिए । इसी समय सर्गारम्भ का साधु भी वहाँ आ उपस्थित होता है । पथिक को साधुवाद देकर वह वहाँ समाधि लगाकर स्वर्गवासी हो जाता है । पथिक को भी वधिक मार डालता है ।

पाँचवें सर्ग में जनजागरण का सच्चा चित्रण है । पथिक ने अपने प्राणों की बलि देकर जनता को सचेतन कर दिया । जब राजा पथिक के घर का नामोनिशान करने तथा उसके अनुयायियों को मृत्यु के घाट उतारने की आज्ञा देता है तब जागृत जनता एक हो जाती है । राजसेवक भी जनता से मिल जाते हैं । सब मिलकर राजा को देश से निकाल देता है । देश में जनता के प्रतिनिधियों का शासन प्रारम्भ हो जाता है । स्वदेश की बलिवेदी पर प्राण चढ़ाने वाले पथिक, साधु, पथिक-प्रिया तथा पथिक सुत की स्मृति में जनता एक विशाल मंदिर बनाती है तथा चारों की मूर्तियों की स्थापना करती है । उनके यशगान से देश गूंज उठता है ।

`पथिक` में एक कर्मशील नायक का देश की स्वतंत्रता हेतु सत्याग्रह आंदोलन के हथियार से प्रयत्नशील होने का वर्णन है । काव्यांत में आकर सभी पात्रों का अन्त हो जाता है, पर तब तक जनता सचेत हो चुकी थी । जनता राजा को देश से निकाल देती है तथा स्वराज्य की स्थापना करती है । दूरदर्शी कवि ने प्रस्तुत काव्य का वस्तु वर्णन ऐसा किया है कि उसके प्रत्येक सोपान में भारत के स्वतंत्रता संग्राम का आभास मिलता है । त्रिपाठी जी का यह खण्डकाव्य राष्ट्रीय भावधारा से प्रभावित राजनीतिक चेतना का उज्ज्वल प्रतीक है । गांधीवाद के अमिट प्रभाव से युक्त इस काव्य में आत्मत्याग का मंगलमय प्रभाव दिखाया गया है । इसका काव्यनायक गांधीजी के पथ पर चलने वाले पथिक ही हैं ।" ... वास्तव में पथिक-नायक के गुण और कार्यों को देखा जाय तो वह राष्ट्रपिता महात्मागांधी का प्रतिरूप जान पड़ता है ।"[1] वस्तुतः कवि ने `पथिक` के काव्यनायक को गांधी जी के चरित्र के अनुकूल ढाल दिया है ।

प्रस्तुत खण्डकाव्य का प्रारंभिक छन्द ही प्रकृति के सुरम्य चित्रण का है । आपके प्रकृति चित्रण वैभव का सप्राण प्रमाण है उक्त छन्द —

"राग-रची, रवि राग-भरी अभिराम-विनोद घेरा ।
प्रकृति भवन के सब चित्रों से सुन्दर सरस सबेरा
एक दिवस अतिमुदित उदधि के वीचि-चुंबित तीरे
सुख की भांति मिला प्राची से आकर धीरे-धीरे ।।"

कवि लिखते हैं —" १९२० ई० में मैं रामेश्वरम की यात्रा पर गया था । वहाँ पहली बार समुद्र देखा । उसकी छवि देखकर आत्मविभोर हो उठा । मारे प्रसन्नता के दोनों पैर सागर के पानी में कर एक शिला पर बैठ गया और मुँह से अपने आप एक पद निकल गया । वही पथिक का प्रथम पद है ।"[2] प्रकृति के विभिन्न रूपों के वर्णन से आपका प्रकृतिवर्णन बहुत बढ़िया हो गया है ।

१- पथिक : एक अध्ययन - रामखेलावन चौधरी, पृ० ६.
२- श्रद्धांजलि विशेषांक - सम्मेलन पत्रिका, पृ० २५४-५५.

मुख्य रूप से करुण रस तथा अंग रूप से वीर, रौद्र रसों की अभिव्यक्ति हुई है प्रस्तुत काव्य में । इस काव्य में सार (ललितपद) छन्द का प्रयोग हुआ है । कवि ने काव्य के आद्यंत प्रस्तुत छन्द का सफल निर्वाह भी किया है । भाव सौंदर्य, रस-परिपाक, कला सौष्ठव, मौलिकता, स्वाभाविकता सभी दृष्टियों से आपका यह खण्डकाव्य सफल है । वर्णन प्रधानता तथा घटना व्यापारों की कमी कभी-कभी पाठकों को उबा देती है । और एक दोष यह भी कहा जा सकता है कि वर्णन के कुछ प्रसंगों में -- विशेषकर विरह-प्रसंग -- प्राचीन-काल के कवियों के भावों की छाप परिलक्षित है । प्रमाण हैं पथिक के चौथे सर्ग की कुछ पंक्तियां --

" एक बार आओ आंखों में मूंद तुम्हें मैं लूंगी
देखूंगी फिर न और को, तुम्हें न देखने दूंगी ।"

यह पंक्तियां कबीरदास की उस उक्ति की याद दिलाती है --

"नैना अंतरि आव तू, ज्यों हौं नैन झंपेऊं ।
ना मैं देखूं और को, ना तुम्ह देखन देऊं ।।"

उसी प्रकार

" काग ! खाय सब पुरी कर लो चुन चुन कर इस तन को
देना छोड़ दया करके प्रिय दर्शन प्यासी नयन को ।"

की उक्ति में जायसी के `पद्मावत` की पंक्तियों की स्पष्ट छाया है --

" यह तन जारौं छार कै कहौं कि पवन उड़ाउ
मकु तेहि मारग होइ परौं कंत धरैं जहां पाउ ।।"

स्वदेश सेवा के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर करने वाले पथिक के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना का ही प्रस्तुत काव्य में वर्णन हुआ है । कलापक्ष एवं भावपक्ष दोनों में सधा-सधा यह काव्य कला की कसौटी पर भी सफल उतरने वाला है ।

वीर हमीर (डा० रामकुमार वर्मा)

'वीर हमीर' श्री वर्मा का एक सुन्दर खण्डकाव्य है जिसमें वीर शूर राजपूतों के प्रण-पालन का चित्र खींचा गया है । यह काव्य सन् १९२० ई० में प्रकाशित हुआ । रणथम्भौर के वीर राजा हमीर पर अलाउद्दीन का इतिहास प्रसिद्ध युद्ध ही प्रस्तुत काव्य का इतिवृत्त है । अपनी वीरता, दान-दया शीलता धर्मपरायणता आदि के कारण हमीर खूब ख्याति प्राप्त थे । एक दिन राजा के पास एक मंगोल सरदार अभय के लिए आ गया । वह दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन का सरदार था, किसी अपराध के कारण उसका सिर काट डालने की आज्ञा हुई थी । राजा ने उसे अपने यहाँ अभय दान देते हुए यह प्रण किया कि उसकी रक्षा का सारा प्रबन्ध वे करेंगे ।

अलाउद्दीन के कानों यह बात पहुँच गयी तो वह आग बबूला हो गया तथा अपनी सेना को रणथम्भौर पर आक्रमण करने की आज्ञा दी । अलाउद्दीन के सैन्य-अभियान का वृत्तांत रणथम्भौर पहुँचा तो वीर हमीर ने अपनी सेना को भी सजग रहने का आदेश दिया । उन्होंने भारतीय वीर आर्यों की गौरव गाथा सुनायी व यह भी याद दिलायी कि भ रते दम तक स्वदेश हेतु युद्ध करना चाहिए । राजमहल जाकर रानी को भी आपने यह सूचना दी कि यदि आर्यदल की पराजय हो जाये तो राजपूती नारियों को जौहर व्रत का पालन करना चाहिए ।

अगले दिन अलाउद्दीन तथा वीर हमीर की सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ । वीर हमीर के अदम्य पराक्रम के सम्मुख उस दिन के युद्ध में अलाउद्दीन परास्त हो गया । इसी बीच किसी बैर के कारण वीर हमीर का एक सचिव अलाउद्दीन के पक्ष में जा मिला और उन्हें दुर्ग सम्बन्धी गूढ़ संकेत दे दिया । फिर भी जीत राजा की ही रही और अलाउद्दीन की सेना पराजित होकर भागने लगी । राजपूत वीरों ने उनसे उनकी ध्वजा को छीन लिया व विजयहर्ष से आनन्द-घूर्णित होकर राजमहल की ओर लौटे । राजमहल की ललनाओं ने

यवन ध्वजा लहराते हुए आदमियों को राजमहल की ओर प्रवाहित होते देख लिया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि राजपूती दल की पराजय हो गयी है । उन्होंने जौहर व्रत का पालन करते हुए प्राणों का उत्सर्ग किया । आनन्द विभोर होकर वीर हमीर ने राजमहल में प्रवेश किया तो अपनी भूल पर अत्यन्त दुःखी हुए तथा पश्चातापवश उन्होंने अपने हाथों सिर काट लिया । सन्धि सुरजन से यह बात जानकर फिर अलाउद्दीन आ धमके और वीर हमीर के अभाव में दुर्ग रक्षा असंभव हो गयी और रणथम्भौर पर अलाउद्दीन का अधिकार जम गया ।

इतिहास प्रसिद्ध राजपूत राजा वीर हमीर के शौर्य की कथा ही प्रस्तुत ऐतिहासिक खंडकाव्य का विषय है । कथावस्तु की संक्षिप्तता, एकरूपता, कम पात्र आदि के कारण काव्य की कलात्मकता बढ़ गयी है । मुख्य रूप से वीर रस का और अंतिम भाग में करुण रस का पूर्ण परिपाक प्रस्तुत काव्य में हुआ है । आद्यंत एक ही छन्द-गीतिका- में निर्मित यह काव्य ग्यारह सर्गों में विभक्त है । द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक शैली की भूमिका में ही वर्मा जी के इस प्रारंभिक खण्डकाव्य का नियोजन हुआ है ।

२- सामान्य विशेषतायें

आधुनिक प्रारंभिक खण्डकाव्य भाव एवं रूप दोनों क्षेत्रों में नव भंगिमाएं लेकर अवतरित हुए । आधुनिक काल में समूचे हिन्दी काव्य क्षेत्र में जो क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ था, उसकी स्पष्ट झांकी तत्कालीन खण्डकाव्यों में भी परिलक्षित होती है । तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप उसने राष्ट्रीय एवं राजनीतिक स्वर को बुलन्द किया । इस काल के खण्डकाव्य अधिकांशतः इतिवृत्तात्मक थे, तथा खण्डकाव्य सम्बन्धी लक्षणों को पूर्ण करने वाले थे । एक छोटी सी प्रख्यात या काल्पनिक कथावस्तु के द्वारा एक प्रभावशाली जीवन्त घटना के चित्रण में वे सर्वथा सफल रहे । काव्य विषय का क्षेत्र विशाल हो गया। वस्तु जगत के सभी दृश्य व पदार्थ काव्य के विषय बने । पौराणिक व ऐतिहासिक विषय इस काल के खण्डकाव्यकारों के प्रेरणास्रोत रहे । पुराणों में महाभारत तथा रामायण के

आख्यान व उपाख्यानों ने खण्डकाव्यों को अधिक प्रश्रय दिया । पौराणिक कथावस्तुओं के आधार पर इस काल में हरिश्चन्द्र, जयद्रथ वध जैसे काव्य विरचित हुए तो ऐतिहासिक आधार पर रंग में भंग, मौर्यविजय, महाराणा का महत्व, वीर हमीर जैसे खण्डकाव्य प्रणीत हुए । श्री रामनरेश त्रिपाठी जी कल्पना की भूमि पर प्रबन्ध काव्य का सृजन करने वाले हुए । आपके खण्डकाव्य 'मिलन' पथिक, मैथिलीशरण गुप्त जी का 'किसान', सियारामशरण गुप्त जी का 'अनाथ', जयशंकर प्रसाद जी का प्रेम पथिक आदि काल्पनिक कथावस्तुओं पर अवलम्बित खण्डकाव्य हैं । इस काल के अधिकांश खण्डकाव्य तत्कालीन राजनीतिक, राष्ट्रीय, धार्मिक प्रवृत्तियों को मुखरित करने में सर्वथा सक्षम रहे । किसान, अनाथ, मिलन, पथिक आदि खण्डकाव्य इसके अनुपम निदर्शन हैं । प्रकृति की मनोहारिणी छटा का कमनीय चित्रण भी कतिपय खण्डकाव्यों में हुआ है ।

इस काल के खण्डकाव्यों के पात्र मानवीय धरातल पर विचरण करने वाले रहे तथा उनके चरित्र का चित्रण भी मानवीय धरातल पर ही हुआ । पौराणिक अलौकिक पात्र भी अपनी अलौकिकता के अवगुंठन से विमुक्त होकर, उन्मुक्त लौकिकता की ओर उतर आये । मानवीय विशेषताओं से विभूषित होकर ही ये पात्र अवतीर्ण हुए । ऐतिहासिक पात्र तो अपनी ऐतिहासिकता को बनाये रखने वाले हैं । काल्पनिक खण्डकाव्यों के कथापात्र तो कवियों की कल्पना की उपज हैं, जिनका चरित्र चित्रण बड़े ही मनोयोग के साथ इन कवियों ने किया है ।

सभी खण्डकाव्यकारों ने अपने काव्य में रस की ही सरस अभिव्यंजना की है । इस काल में मुख्यतया करुण, वीर, शृंगार रसों के ही काव्य अधिक विरचित हुए । भंग रूप में अन्य रस भी कतिपय खंडकाव्यों में व्यंजित है । रस-संयोजना में इस काल के कवि बड़े ही जागरूक रहे हैं ।

सर्गबद्ध एवं सर्गरहित खण्डकाव्य इस काल में रचे गये । जयद्रथ वध, मौर्यविजय, मिलन, पथिक जैसे काव्य सर्गबद्ध हैं तो प्रेमपथिक, रंग में भंग, अनाथ, विकट भट जैसे काव्य

सर्ग रहित हैं । `किसान` सर्गरहित काव्य है लेकिन शीर्षकों में कथाखण्डों का विभाजन हुआ है । इस काल के अधिकांश खण्डकाव्य छंद बद्ध शैली में ही प्रणीत हुए । जयद्रथ वध, मौर्य-विजय, मिलन, पथिक, वीर हमीर आदि छन्द बद्ध काव्य हैं जिनमें आद्यंत एक ही छंद की मंजु योजना हुई है । खण्डकाव्यकारों ने अपने काव्य में यथोचित अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग किया है । भाषा के क्षेत्र में इस काल में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ था । काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ीबोली काव्य भाषा का स्थान पा गयी । इस काल के अधिकांश खण्डकाव्यों की काव्यभाषा यही व्याकरण सम्मत शुद्ध खड़ीबोली है । केवल हरिश्चन्द्र तथा प्रेमपथिक ही इसके अपवाद हैं । इस प्रकार, छायावाद पूर्व खण्डकाव्य भाव एवं रूप दोनों क्षेत्रों में विशेषताओं से विभूषित होकर ही अवतीर्ण हुए ।

ख

छायावादी युग के खण्डकाव्य

ग्रंथि (सुमित्रानन्दन पंत)

कोमल-कांत कविता के कर्ता हिन्दी के लोकप्रिय कवि श्री सुमित्रानन्दन पंत जी का एक विख्यात काव्य ग्रंथ है ग्रंथि । छायावादी शैली में विरचित छायावादी काव्य की सभी विशेषताओं से विभूषित यह काव्य हिन्दी खण्डकाव्य-परम्परा में एक नवीन प्रयोग है । प्रस्तुत काव्य का प्रकाशन सन् १९२० ई० में हुआ । 'खण्डकाव्य के प्रयोग छायावादी युग में दो हुए -- पंत की 'ग्रंथि' और प्रसाद का 'आंसू' ।[१]

'ग्रंथि' एक विरह काव्य है, जिसमें विरह वेदना का मार्मिक चित्रण हुआ है । काव्य का प्रारंभ प्रकृति के मादक प्रांगण में होता है । एक सुरम्य वसन्ती रजनी में सरोवर में नौका-विहार कर रहा है काव्यनायक । नायक ठीक तरह से नाव खेना नहीं जानता था । इस कारण अस्ताचलगामी सूर्य के साथ-साथ नायक की नाव भी सरोवर में डूब जाती है । इस दुर्भाग्य की वेला में भी सौभाग्य झांक रहा था । एक बालिका तैर कर नायक को डूब मरने से बचाती है । सौन्दर्य प्रेमी नायक की दृष्टि क्षण में ही इस सुन्दर बालिका पर पड़ जाती है । उसके मन का सुप्त प्रेम जाग उठता है तथा वह बालिका से प्रणय की भिक्षा मांगता है । किन्तु बालिका चली जाती है । अपने प्रेम में नायक सफल मनोरथ नहीं होता । नायक नायिका को सदैव के लिए अपनाना चाहता है किन्तु नायिका का विवाह सामाजिक बन्धनों के अनुकूल किसी अन्य व्यक्ति के साथ नायक के सम्मुख ही संपन्न हो जाता है । नायक के सारे सपने टूट जाते हैं तथा वह चिर वियोग में डूब जाता है ।

१- हिन्दी साहित्य में काव्यरूपों के प्रयोग - डा० शंकरदेव अवतरे, पृ० ४३.

परस्पर आकर्षण के कारण प्रेम, तथा प्रेम की असफलता के फलस्वरूप प्राप्त विरह का ही मर्मस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत काव्य में हुआ है । प्रेम तथा विरह की अर्थात् शृंगार के दोनों पक्षों का - संयोग एवं शृंगार - सफल चित्रण इस में है । संयोग वर्णन में नख-शिख भी है । प्रकृति के अमर गायक पंत जी ने प्रकृति का भी सम्मोहक चित्र अपने इस खण्ड-काव्य में उपस्थित किया है । काव्य में काव्यनायक ही अपनी कथा का आख्यान करता है। कथा का सूत्र स्वयं कवि के अनुसार काल्पनिक है । लेकिन इसमें मिलन, प्रेम, रूप, विरह आदि का इतना हृदयस्पर्शी वर्णन हुआ है कि यह कवि का ही आत्म-प्रलाप जान पड़ता है । अथवा प्रस्तुत खण्डकाव्य `ग्रंथि` में स्वयं कवि अपने ही प्रेम की ग्रंथि खोलकर उपस्थित करता है । मनोवैज्ञानिक सूत्रों के आधार पर भी इस की वैयक्तिकता स्पष्ट परिलक्षित हो जाती है । आलोचकों में आचार्य वाजपेयी जी, डा० नगेन्द्र, विश्वंभर मानव आदि भी `ग्रंथि` की कथा में कवि के वैयक्तिक जीवन का सम्बन्ध मानते हैं । यह काव्य दरअसल अत्यंत निर्दयता से तोड़े गये कोमलतम हृदय का करुण चीत्कार है । "जब तारुण्य का बाल-रवि उस (कवि) के प्राणों को पुलकित कर रहा था उसी समय उस मधु वेला में भाग्य ने उसके हृदय में एक ग्रंथि डाल दी, जिसे वह कदाचित् अभी तक नहीं खोल सका है ।"[1]

डा० नगेन्द्र जी इस काव्य को प्रबन्धकाव्य नहीं मानते, मानते हैं गीतिकाव्य ।[2] लेकिन प्रस्तुत काव्य के काव्यरूप का विशद विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि अपनी सुगठित प्रबन्धात्मकता के कारण यह गीतिकाव्य की सीमा को लांघ कर प्रबंध काव्य की कोटि को पहुंच जाता है । ग्रंथि एक विरह काव्य है । विरह काव्य के रूप में खण्डकाव्य के विश्वसाहित्य में सर्वप्रथम आविष्कर्ता संस्कृत के कवि कुल पुंगव कालिदास हैं । आपका `मेघदूत` आचार्य विश्वनाथ द्वारा खण्डकाव्य के उदाहरण रूप प्रस्तुत किया गया । पंतजी

१- सुमित्रानन्दन पंत (सप्तम संस्करण) - डा० नगेन्द्र, पृ० ८७.

२- वही, पृ० ६४.

की `ग्रंथि` अपने युग की अनूठी रचना है । सिद्धांत की दृष्टि से देखा जाय तो यह खण्डकाव्य का एक नया प्रयोग है । भाषा, अभिव्यंजना शैली एवं उद्देश्य आदि में युगानुरूप परिवर्तन के साथ, छायावादी विशेषताओं से अभिमण्डित कर श्री पंत जी ने अपनी `ग्रंथि` नामक खण्डकाव्य की रचना की है ।

कीचक-वध (शिवदास गुप्त)

महाभारत के कीचक-वध प्रसंग को उपजीव्य बनाकर प्रणीत प्रस्तुत खण्डकाव्य का प्रकाशन सन् १९२१ ई० में हुआ । पाण्डवों के वनवास काल की एक घटना ही इस में वर्णित है । अज्ञातवास के समय पाण्डव विराट राव के राजमहल में वास करते हैं । द्रौपदी वहाँ राणी सुदेष्णा की दासी का काम करती है । सैरन्ध्री नाम से द्रौपदी वहाँ ठहरती है । विराट राजा का साला कीचक कामुक व्यक्ति था, जिसकी वासना भरी दृष्टि सदैव सैरन्ध्री पर रहती थी । उसे बलात् अपने वश में कर लेने की चेष्टा में था वह । राणी सुदेष्णा भी कीचक के लिए आवश्यक अवसर जुटा देती थी । ऐसे ही अवसर पर कि जब कीचक सैरन्ध्री को बलात् अपने वश में करने का प्रयत्न कर रहा था, भीमसेन आ गया तथा उसका वध कर डाला ।

महाभारत के विराट-पर्व में वर्णित कीचक-वध ही प्रस्तुत खण्डकाव्य का विषय है । कीचक कामुकता के प्रतीक के रूप में आया है तथा सैरन्ध्री नारी के महान आदर्श के रूप में । स्त्री का पतिव्रत धर्म, भीम का शौर्य और कामुक व्यक्ति की दुर्गति की अभिव्यक्ति प्रस्तुत काव्य में हुई है । काव्यकला की दृष्टि से भी `कीचक-वध` सर्वांगसुन्दर एवं सफल रचना है ।

पंचवटी (मैथिलीशरण गुप्त)

गुप्तजी का खण्डकाव्य `पंचवटी` सन् १९२५ ई० में प्रकाशित हुआ । रामकथा के लक्ष्मण-शूर्पणखा प्रसंग पर आधारित है यह काव्य । चौदह वर्ष के वनवास के लिए निकले हुए श्रीराम, सीता तथा लक्ष्मण दण्डकारण्य पहुँच जाते हैं । वहाँ अगस्त्य मुनि के आदेशानुसार

वे गोदावरी के सुरम्य तट पर पंचवटी में पर्णकुटी बना कर रहने लगते हैं। राक्षस राज रावण की बहिन शूर्पणखा घूमती-फिरती पर्णकुटी आ जाती है। लक्ष्मण के अपार रूप सौन्दर्य पर विमुग्ध होकर वह उस से प्रणय-प्रार्थना करती है। लक्ष्मण की ओर से उसे तिरस्कार ही प्राप्त होता है। फिर श्रीराम को देखकर वह उनसे भी प्रणय-प्रार्थना करती है। सब ओर से उसका तिरस्कार हो जाता है तो उसे अपनी स्थिति के अपहसित रूप का आभास होता है तथा वह भीषण रूप धारण कर लेती है जिसके परिणाम स्वरूप लक्ष्मण उसके नाक व कान काट लेते हैं। भयंकर चीत्कार के साथ वह जंगल की अगाधता की ओर प्रयाण करती है।

सुप्रसिद्ध रामायणीय उपाख्यान ही गुप्तजी के `पंचवटी` काव्य का आधार है। यह एक सर्गरहित तथा १३८ छंदों का लघु खण्डकाव्य है। कवि ने कथा के मार्मिक स्थलों को चुनकर पूरी तरह से रसानुभूति के लिए अवकाश रखा है। संस्कृत मिश्रित भाषा शैली का निखरा हुआ रूप काव्य में विद्यमान है। आपकी भाषा शैली में सरलता के साथ भावप्रकाशन की भी अद्भुत शक्ति है।

आंसू (जयशंकर प्रसाद)

श्री जयशंकर प्रसाद जी द्वारा प्रणीत एक बहुचर्चित एवं बहुप्रशंसित काव्य ग्रंथ है `आंसू`। यह तो एक विशिष्ट प्रेमकाव्य या विरहकाव्य है। इस की रचना कवि ने १९२३-२४ के लगभग की और इसका प्रथम प्रकाशन हुआ सन् १९२५ ई० में। इसमें केवल १२६ छंद थे। फिर सात आठ वर्षों के पश्चात् उसका दूसरा परिवर्द्धित संस्करण निकला जिसमें १९० छंद हैं। इस परिवर्द्धित संस्करण में काव्य के कुछ छन्दों का क्रम बदल दिया गया है तथा कुछ नये छन्द जोड़ भी दिये गये हैं।

`आंसू` एक विरह काव्य है जिसमें एक विरही हृदय के सहज-स्वाभाविक उद्गारों का वर्णिमन हुआ है --

'जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छायी
दुर्दिन में आंसू बनकर
वह आज बरसने आयी ।'

काव्य के प्रारंभ में कवि अपने प्रेम की करुण कथा सुनाने का उपक्रम करते हैं तथा फिर प्रथम दर्शन से लेकर वियोग तक की अनुभूतियों की अभिव्यंजना करते हैं । 'शशिमुख पर घूंघट डाले, आंचल में दीप छिपाये' गोधूली बेला में कवि के मानस में प्रथमत: अवतरित हुए उस रूप के प्रति प्रेमी का आकर्षण बढ़ता ही गया । कवि ने उस रूप का अनोखा वर्णन किया है जिसने उन्हें प्रभावित किया । पूर्व राग के बाद उनके जीवन में मधुर मिलन की मीठी घड़ियों का प्रवेश हो जाता है, कवि की चेतना आनंदमदिरा के पान में ही लीन होकर मदमस्त हो जाती है । आंखें खुल जाती हैं तो पता चलता है कि उस रूप की मोह-माया केवल छलना थी । कवि का मानस विरह दग्ध हो जाता है ।

काव्य का शेष अंश विरह वर्णन से ओतप्रोत है । विरहदग्ध हृदय के उपालंभों व उद्गारों से काव्य भरा पड़ा है । अपने विरह का मार्मिक वर्णन करके वह प्रिय के हृदय को पिघलाने के यत्न करता है । उसे आशा थी कि एक न एक दिन प्रिय का हृदय अपने प्रेमी पर पसीज जायगा तथा वे दर्शन अवश्य देंगे । लेकिन अपनी आशा में वे सफल मनोरथ होते नहीं । उस वज्रादपि कठोर हृदय वाले निष्ठुर प्रेमी पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता । अन्त में कवि व्यापक दार्शनिक धरातल पर पहुंच कर आश्वास पाने का श्रम करते हैं । वे अपने दु:ख को अलौकिकता की पृष्ठभूमि पर ले चलते हैं तथा अपनी वेदना को भूलने तथा उसे लोकमंगलकारी रूप देने के प्रयत्न में मग्न हो जाता है ।

काव्यांत में आकर काव्य में अभिव्यंजित लौकिक प्रेम आध्यात्मिक धरातल तक पहुंच जाता है जिस कारण प्रस्तुत प्रेम काव्य पर अलौकिकता का आरोप हुआ है ।"... इस में व्यंजित लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम का रूप दे दिया है, किन्तु फिर भी इस की लौकिकता के चिह्न पूरी तरह लुप्त नहीं हैं ।"[१]

१- आधुनिक साहित्य और साहित्यकार - गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ० ४२.

प्रमुखतया आंसू एक विरह काव्य है । 'आंसू' का प्रारंभ विरह से होता है तथा अंत भी । 'आंसू का प्रत्येक छन्द टूटे आंसुओं का एक-एक विह्वल कण है जो अपने में अनेक करुण भावनायें समेटे हुए है ।'[१] आंसुओं से सचमुच प्रस्तुत काव्य का शीर्षक भी सार्थक निकला है ।

इसका काव्यरूप भी चर्चा का विषय हुआ है । कथा के अभाव का आरोप लगा कर कतिपय विद्वानों ने इसे गीतिकाव्य ठहराया है । लेकिन इस काव्य में कथावस्तु का नितांत अभाव है - ऐसा कहा नहीं जा सकता । द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया के रूप में जिस छायावाद का उदय हुआ उसकी प्रमुख विशेषता ही आख्यानात्मकता के प्रति विद्रोह है । क्षीण कथासंकियों पर प्रबन्ध काव्यों का निर्माण इस काल में खूब हुआ । आंसू काव्य भी ऐसा ही एक नवीन प्रयोग है खण्डकाव्य का । ' ..... कथानक की रूप-रेखाएं उस में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर नहीं होती, किन्तु फिर भी अतीत की अभिव्यंजना इस में योजनाबद्ध ढंग से हुई है, जिससे प्रणयगाथा के सूत्र सहज उपलब्ध हो जाते हैं ।'[२] डा० इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में --'यह प्रसाद के संसारी प्रेमव्यापार का वियोगात्मक आख्यान है जिसे कवि ने कला के आवरण में बड़ी दक्षता से सजाकर रख दिया है ।'

यही नहीं स्वयं कवि ने काव्य के प्रारंभ में करुण कथा सुनाने की बात बतायी है --'अवकाश मिला है किसको सुनने को करुण कथाएं ।'[३] स्पष्ट है कि प्रेमी-प्रेमिका के मधुर मिलन तथा तत्पश्चात् के विरह की कथा की क्षीण संकियों पर ही प्रस्तुत काव्य का प्रणयन हुआ है । कलापक्ष एवं भावपक्ष दोनों का प्रौढ़ समन्वय इस काव्य में हुआ है । प्रस्तुत विरह काव्य में विप्रलंभ शृंगार की सर्वांगपूर्ण अभिव्यंजना हुई है । बीच में

१- आधुनिक कवि - विश्वंभर मानव, पृ० २५२.

२- आधुनिक साहित्य और साहित्यकार - पृ० ५०.

३- आंसू - प्रसाद.

मिलन प्रसंग के वर्णन के अवसर पर संयोग शृंगार का अंगरूप में चित्रण है । नख-शिख की भी इस काव्य में योजना हुई है । इसकी प्रतीक योजना तथा अलंकार विधान पर छायावाद का सुस्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । कुल मिलाकर प्रस्तुत काव्य में १६० 'आनन्द' नामक छन्द हैं जिसकी सफल योजना भी हुई है । काव्य में कवि वेदना की दार्शनिक व्याख्या देते हुए यह सन्देश भी सुनाते हैं --

'सब का निचोड़ लेकर तुम, सुख से सूखे जीवन में ।
बरसो प्रभात हिमकण-सा, आंसू इस विश्व-सदन में ।।'

अभिमन्यु-वध (रघुनन्दनलाल मिश्र)

इस खण्डकाव्य का प्रकाशन सन् १६२५ ई० हुआ । महाभारतीय कथा ही प्रस्तुत काव्य का उपजीव्य है । अभिमन्यु के चक्रव्यूह भेदन तथा उस की वीर मृत्यु का उज्ज्वल वर्णन काव्य में हुआ है । कुरुक्षेत्र युद्ध के तेरहवें दिन पाण्डव पक्ष के किसी एक महारथी का वध कर डालने के उद्देश्य से दुर्योधन के आदेशानुसार गुरु द्रोण चक्रव्यूह का निर्माण करते हैं तथा पाण्डव पक्षी महावीरों को व्यूह भेदन के लिए ललकारते हैं । पाण्डव पक्ष में केवल अर्जुन ही व्यूह भेदन की कला से पूर्णतः अभिज्ञ हैं । वह छल से संशप्तक भेद दिया जाता है तथा महारथी कृष्ण भी उनके साथ हैं । वीर अभिमन्यु के अभाव में युधिष्ठिर, दुर्योधन के ललकार को बदला देने के मामले में चिंतित हो जाते हैं । अचानक ही वीरता की प्रतिमूर्ति युधिष्ठिर के सम्मुख प्रत्यक्ष हो जाते हैं तथा अपने युद्धकला-ज्ञान के विषय की सूचना देते हैं । जबकि बालक अभिमन्यु माता सुभद्रा के पेट में था, और माता प्रसव-पीड़ा से तड़प रही थी, तब उसकी पीड़ा भुलाने के लिए अर्जुन ने चक्रव्यूह भेदन की कला सुनायी थी । अंतिम भाग वह सुन न सका क्योंकि इतने में उसका जन्म हुआ । यों चक्रव्यूह के सात व्यूहों में छः के भेदन की कला से वह पूर्णरूप से अवगत है । सोलह वर्षीय बालक को व्यूह भेदन के लिए भेजने के लिए पहले युधिष्ठिर तैयार नहीं होते, पर अपने दूसरे भाइयों के आदेश पर वे उस वीर बालक को आशीर्वाद सहित भेजदेते हैं । अपनी माता तथा अपनी

प्रिय पत्नी से विदा लेकर बालक रणक्षेत्र पहुंचता है तथा अपना पराक्रम दिखाता है । कौरव पक्षी महारथियों पर अकेले वार करके उन्हें नीचे गिराते हुए वह गर्भ द्वार तक पहुंचता है । वहीं पर सारे महारथी उसे घेर कर खड़े हो जाते हैं तथा अभिमन्यु के हाथ से शस्त्र नीचे गिर पड़ता है । इस वक्त दुर्योधन पुत्र लक्ष्मण तथा अन्य कौरव पक्षी मिलकर बालक अभिमन्यु पर वध कर डालते हैं । अपने प्राणप्यारे की मृत्यु पर उत्तरा विलाप कर उठती है तथा आखिर उसका दाह संस्कार भी संपन्न हो जाता है । गर्भिणी उत्तरा वंश-परंपरा को बनाये रखने हेतु अपने प्राणों का विसर्जन नहीं करती ।

अभिमन्यु के वीर पराक्रम, चक्रव्यूह भेदन तथा वीरमृत्यु की कथा का मार्मिक वर्णन काव्य में हुआ है । उत्तरा की विदा तथा उसके विलाप का प्रसंग अत्यंत हृदयहारी है । काव्य में वीर एवं करुण रसों की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है । काव्य की शैली भी नितांत उदात्त है । कला की दृष्टि से यह एक सफल खण्डकाव्य है ।

शक्ति (मैथिलीशरण गुप्त)

गुप्तजी कृत शक्ति खण्डकाव्य सन् १९२७ में प्रकाश में आया । मार्कण्डेय पुराण के 'दुर्गासप्तशती' सम्बन्धी आख्यान ही प्रस्तुत काव्य का आधार है । देवी दुर्गा का माहात्म्य ही काव्य में वर्णित है । दैत्यों के अत्याचारों से पीड़ित अमरों के सम्मिलित तेज से मातृमूर्ति का आविर्भाव हुआ । इसी शक्ति ने महिषासुर का मर्दन किया है । शुंभ-निशुंभ भी देवी से युद्ध के लिए आये । ये आये थे देवी के रूप-सौन्दर्य पर विमुग्ध होकर उन्हें अपनी पत्नी बनाने के लिए । देवी ने अपनी प्रचण्ड शक्ति का प्रदर्शन किया । शुंभ-निशुंभ देवी का वरण करने में ही असमर्थ न हुए वरन् युद्ध में मारे भी गये । यों देवी की शक्ति के कारण देव-गण आततायियों से छुटकारा पा सके तथा उन्हें स्थायी शांति उपलब्ध हुई। देवी माहात्म्य के वर्णन से काव्य की इति भी होती है ।

वस्तुतः यह काव्य दुर्गा या शक्ति स्तवन ही है । लेकिन इस काव्य का एक प्रतीकात्मक पक्ष भी है जिसमें परमुखापेक्षिता शक्ति के त्याग तथा स्वशक्ति के संगठन की

और संकेत हुआ है । कवि यही व्यंजित करना चाहते हैं कि भारतीयों की अंग्रेजी शासन के पारतंत्र्य-पाश से संगठित जनशक्ति के द्वारा ही मुक्ति हो सकती है । शक्ति माहात्म्य एवं राक्षस-संहार का प्रबन्धबद्ध वर्णन काव्य में हुआ है । शैली की दृष्टि से भी यह काव्य सफल है ।

कर्णभार (मैथिलीशरण गुप्त)

सन् १९२७ में गुप्तजी का खण्डकाव्य 'कर्णभार' प्रकाशित हुआ । महाभारत पर आधारित इस रचना में भीम के द्वारा बक के वध की घटना का वर्णन प्रस्तुत है । घटना से अधिक, कुन्ती के महान् चरित्र का उद्घाटन हुआ है । वनवास के समय जिस ब्राह्मण के यहाँ कुन्ती अपने पुत्रों सहित निवास करती थी, उसको राक्षस बक के पास भोजन रूप में उपस्थित होने की बारी आयी । माँ-बाप तथा पुत्री-पुत्र के बीच यह विवाद छिड़ गया कि कौन जाय ? यह विवाद अत्यंत मार्मिक था और उसे देख कुन्ती का जी भर आया । माता कुन्ती ने अपने पुत्र भीम को राक्षस के पास आहार के रूप में भेज देने का निश्चय किया । कर्तव्यपालन कर चुकने के बाद माता के मन में कर्तव्य तथा वात्सल्य के बीच जो संघर्ष उठा उसका मनोवैज्ञानिक चित्र काव्य में उपस्थित है । कुन्ती के कार्य से ब्राह्मण परिवार का उपकार हुआ तथा बक की हत्या हुई जिससे अनेकों परिवार के सम्मुख की भीषण विभीषिका टल गयी । कुन्ती के मन के उठने वाले द्वन्द्वों का सजीव आविष्करण काव्य में हुआ है । भाव, भाषा एवं चरित्र चित्रण की दृष्टि से गुप्तजी का यह खण्ड-काव्य सफल है ।

वनवैभव (मैथिलीशरण गुप्त)

गुप्तजी का खण्डकाव्य 'वनवैभव' सन् १९२७ ई० में प्रकाशित हुआ । महाभारत पर आधारित प्रस्तुत रचना में युधिष्ठिर के चरित्र की महत्ता का उद्घाटन हुआ है । पांडव पत्नी सहित वनवास के कष्टों को भोग रहे थे कि उन्हें चिढ़ाने के लिए दुर्योधन वन में

जाता है । उनके आगमन के बारे में सुनते ही युधिष्ठिर को छोड़ कर अन्य भाइयों तथा द्रौपदी के मन में क्रोध एवं घृणा की भावना पैदा हो जाती है । लेकिन युधिष्ठिर उन्हें शांत तथा प्रकृतिस्थ करते हैं । इस बीच वन-विहार करते हुए कौरव आ जाते हैं । गन्धर्व चित्ररथ के साथ कौरवों का युद्ध हो जाता है तथा वे हार जाते हैं । युधिष्ठिर को दुर्योधन की बन्धनावस्था का पता चलता है तो युधिष्ठिर की आज्ञा पर अर्जुन जाकर कौरव भ्राताओं को मुक्त कर देते हैं ।

प्रस्तुत खण्डकाव्य में वन के भौतिक वैभव तथा युधिष्ठिर के आत्मिक वैभव का मनोज्ञ चित्रण है । चौपाई छन्द में प्रस्तुत काव्य का प्रणयन हुआ है ।

सैरन्ध्री (मैथिलीशरण गुप्त) ✓

गुप्तजी का 'सैरन्ध्री' नामक खण्डकाव्य सन् १९२८ ई० में प्रकाशित हुआ । महाभारत के आधार पर विरचित इस काव्य में पाण्डवों के अज्ञातवास के समय का एक प्रसंग वर्णित है । अज्ञातवास की अवधि में पाण्डव विराटराज के यहां रहते हैं । यहां पर द्रौपदी को रानी सुदेष्णा की दासी का कार्य करना पड़ता है । विराट का साला कीचक सैरन्ध्री (द्रौपदी) पर आसक्त हो जाता है और बलात् उसे वश में करने की चेष्टा करता है । रानी भी कीचक का पक्ष लेती है । पर भारतीय धर्म पर दृढ़ आस्था रखने वाली सैरन्ध्री रक्षक-हीन तो नहीं थी । भीमसेन कीचक के वध करने की योजना बनाता है तथा उसका वध कर डालता है ।

कीचक-वध ही काव्य का मुख्य प्रसंग है । लेकिन सैरन्ध्री का चरित्र ही मुख्य रूप से निखर उठा है । प्रस्तुत खण्डकाव्य में गुप्तजी ने द्रौपदी के सतीत्व का वर्णन करते हुए उसकी चारित्रिक महत्ता पर प्रकाश डाला है । हृदय पद्धति में काव्य लिखा गया है ।

कीचक-वध के प्रसंग पर शिवदास गुप्त का एक खण्डकाव्य 'कीचक वध' प्रकाशित हुआ है, जिसका उल्लेख पहले हुआ है ।

स्वप्न (श्री रामनरेश त्रिपाठी)

श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा प्रणीत एक सुन्दर खण्डकाव्य है 'स्वप्न'। सन् १९२९ ई० में यह काव्य प्रकाशित हुआ। काव्य की भूमिका में कवि ने स्वयं बताया है कि काश्मीर यात्रा के स्मृतिरूप में इस काव्य का प्रणयन हुआ है। यह काव्य पाँच सर्गों में विभक्त है। काव्यनायक वसंत के सुविधामय दृश्य चित्रण से कथा का श्रीगणेश होता है। उसको एक ओर तो देश के दुःख दैन्य का मानसिक कष्ट है तो दूसरी ओर प्रेयसी के सौन्दर्य एवं शृंगार का तथा प्रकृति की सुखद गोदी का प्रोत्साहन है। दूसरा सर्ग प्रकृति के मनोरम चित्रों तथा 'भावधाराान्वित' वसंत की मधुर कल्पनाओं से ओतप्रोत है। उसकी प्रिया सुमना अपने पति को चिंता से विरत करने का प्रयत्न करती है। फलतः वह गृहस्थ जीवन के सुख भोग की ओर उन्मुख हो जाता है। तृतीय सर्ग में वसंत के सुसमृद्ध देश पर होने वाले शत्रुओं के आक्रमण एवं देश रक्षा के लिए कमर कस जाने वाले देशवासियों की वीरता का वर्णन है। इस परिस्थिति में वसंत अपनी प्रिया के संग विलास में जीता है। मानिनी सुमना पति के ऐसे आचरण पर लज्जा व ग्लानि से भर जाती है। वह एक रात मरदाने वेष में घर से निकल पड़ती है। चौथे सर्ग में पत्नी-वियोग से दुःखी वसंत का सुमना की खोज में गली-गली घूमने-फिरने का वर्णन है। उसकी आशा निराशा में बदल जाती तथा वह विरागी होने लगता है। तब अचानक एक बलिष्ठ युवक उसके पास आता है तथा स्वदेश रक्षा के लिए प्रयत्नशील होने की प्रेरणा देता है। यह भी सूचित करता है कि सुमना नामक युवती भी देश-रक्षा के पुनीत कर्तव्य में निरत है। वसंत में पौरुष का जागरण होता है तथा वह युद्धभूमि में अवतरित होता है। पाँचवें सर्ग में वसंत का रणांगण में कूद पड़ने तथा दूसरों को प्रेरणा देने तथा विजयलक्ष्मी को वरण करने का वर्णन है। चारों ओर उसके कीर्तिगान से मुखरित होता है। वसंत इस आनन्दोत्सव के बीच अपने को प्रेरित करके युद्धभूमि में खड़े करने वाले उस युवक को खोजता है। इसी अवसर पर सुमना पति के गले में विजयमाला पहनाती है और कर्णपुटों में बता देती है कि वह युवक जिस की खोज वसंत करता है, वह वही है। यहीं पर काव्य का सुखद परिणाम होता है।

त्रिपाठी जी का यह खण्डकाव्य भी आपके प्रथम दो खण्डकाव्यों -- पथिक व पथिक -- की भाँति राष्ट्रीय चेतना को वहन किया हुआ है। इस में मातृभूमि पर विदेशियों के आक्रमण का तथा सुषमा के द्वारा सज्जन बना देने पर वसन्त का आक्रमणकारियों को परास्त कर देने का वर्णन है। पावन प्रेम के दो रूप गंगा-जमुना की भाँति प्रस्तुत काव्य में प्रवाहित हैं -- वैयक्तिक प्रेम तथा देशप्रेम। सामाजिक प्रेम देशप्रेम के साथ मिलकर एक हो जाता है, फिर देश के हित व्यक्ति अपने प्रेम को बलि करके राष्ट्रीयता का बाना पहन लेता है। पांच सर्गों में इसकी कथावस्तु का वर्णन हुआ है। प्रस्तुत खण्डकाव्य में काश्मीर की मनोहारी सुषमा अंकित है। काव्यनायक वसंत का अच्छा चरित्र चित्रण हुआ है। उन के मानसिक संघर्षों व द्वन्द्वों को विश्लेषित करने में कवि सफल हुए हैं। रसाभिव्यंजना की दृष्टि से 'स्वप्न' खण्डकाव्य का अपना विशेष महत्व है। खण्डकाव्य की भूमिका में कवि ने स्वयं काव्य में वर्णित रसों का उल्लेख किया है "..... आजकल एक ओर तो देश का दु:खदैन्य करुण रस उत्पन्न कर रहा है, दूसरी ओर सौंदर्य, शृंगार और सुख के लिए प्रकृति का प्रोत्साहन है। नवयुवकों का मार्ग शृंगार और करुण रस के बीच का है।.... इस से इसमें दो परस्पर विरोधी रसों का मिश्रण हो गया है।" वस्तुत: इस काव्य में शृंगार व करुण रस की व्यंजना हुई है अंगी रूप में। प्रासंगिक रूप से यत्र-तत्र वीर भाव एवं शांत रस के भी उदाहरण मिल सकते हैं। प्रसाद एवं माधुर्य गुणयुक्त मंजी हुई मंजु शैली में यह खण्डकाव्य अधिक मनोरम हुआ है। इस काव्य के पांचों सर्गों में प्रत्येक में ४१ छन्द हैं तथा समस्त काव्य 'हरिगीत' छन्द में रचा है। देश सेवा के महान् आदर्श को अभिव्यंजित करने वाला यह लघु खण्डकाव्य कला की दृष्टि से भी संपूर्णत: सफल है।

उद्धवशतक (श्री जगन्नाथदास रत्नाकर)

गोपी-उद्धव संवाद पर आधारित एक खण्डकाव्य है 'उद्धवशतक'। श्री जगन्नाथदास रत्नाकर की यह रचना सन् १९२६ में निकली। प्रमुखत: यह एक विरह काव्य है जिसकी कथा-वस्तु श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत प्रसंग पर आधारित है। भागवतपुराण के दशमस्कन्ध के ४६ व ४७वें अध्यायों में वर्णित भ्रमरगीत के आधार पर हिन्दी में भ्रमरगीतों की एक परम्परा ही

निकली है । इस परम्परा की रचनाओं में यह आधुनिक युगीन काव्य है जिसकी आत्मा मध्यकालीन है ।

प्रस्तुत काव्य में कथा का प्रारंभ राधा और गोपियों के प्रति कृष्ण की विरह व्याकुलता से होता है । यमुनाजी में स्नान करते वक्त कृष्ण देखता है कि एक मुरझाया कमल कुसुम बहता हुआ आ रहा है । उस कुसुम की सुगन्धि उन्हें राधा के शरीर की याद दिलाती है और वे एकदम प्रेम विह्वल हो उठते हैं । दूसरे ही दिन अपने प्रिय सखा उद्धव को सन्देश देकर व्रज भेज देते हैं । परम विरक्त उद्धव ज्ञानोपदेश से गोपिकाओं को समझाने-बुझाने के दृढ संकल्प के साथ व्रज आते हैं । व्रज आकर वे गोपिकाओं को ज्ञान का उपदेश सुनाते हैं तो गोपिकाएं काव्य उक्तियों से उनका खण्डन करती हैं । उद्धव जो ज्ञान के रंग में रंगे हुए थे, गोपियों की प्रेमपूर्ण दशा देखकर इतने अभिभूत हो जाते हैं कि वे स्वयं प्रेम रंग में रंग जाते हैं । अंत में प्रेम-रंग-रंगी होकर वे कृष्ण के पास लौट जाते हैं ।

भागवत प्रसंग पर आधारित इस काव्य में कवि ने युगबोध के अनुकूल मौलिक उद्भावनाओं का प्रयोग किया है । जब कृष्ण उद्धव को सन्देश देकर व्रज भेजने को उद्यत होते हैं तब उद्धव कृष्ण को ज्ञान का सन्देश देने लगते हैं । उसके जवाब के रूप में गोकुल जाकर लौट आने के बाद ऐसी बातें करने को कहते हैं । उद्धव की ज्ञान गरिमा को चूर-चूर करने के लिए कृष्ण उसे गोकुल भेजते हैं । `उद्धवशतक` में गोपियां प्रभु के माध्यम से उद्धव से बातें नहीं करतीं, सीधे उद्धव से बोलती हैं । `मधुप` संबोधन `उद्धवशतक` में अवश्य है । `उद्धवशतक` की गोपियां उद्धव को अपनी काव्य उक्तियों से पराजित करती हैं ।

`उद्धवशतक` में प्रेमगीत परम्परा के अन्य काव्यों की ही भांति योग और ज्ञान पर प्रेमाभक्ति की जीत तथा निर्गुण पर सगुण की महत्ता दिखायी गयी है । विरह का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन प्रस्तुत काव्य में हुआ है । विरह वर्णन के अन्तर्गत षट्ऋतुवर्णन भी परम्परागत उद्दीपन रूप में हुआ है ।

प्रस्तुत काव्य के काव्यरूप के बारे में विद्वानों के बीच मतभेद है । मुक्तक छन्दों में रचित होने के कारण किसी किसी ने इसे मुक्तक काव्य माना है । किसी ने इसे मुक्तक-प्रबन्ध कहा है ।[१] पं० रामचन्द्र शुक्लजी ने इसे प्रबन्धकाव्य उद्घोषित किया है । ११८ कवित्तों में प्रस्तुत काव्य में विषय वर्णन हुआ है । समस्त काव्य में एक ही प्रसंग का चित्रण है तथा आरंभ से अंत तक सम्बन्ध योजना भी है । इस प्रबन्धत्व के कारण यह काव्य मुक्तक काव्य की सीमा को लांघ कर प्रबन्ध-काव्य की श्रेणी पर विराजमान होता है । एक ही मुख्य प्रसंग के क्रमबद्ध मार्मिक चित्रण से युक्त होने तथा विविधता व विशदता के अभाव के कारण इसका काव्यरूप खण्डकाव्य का है । कवि ने कथासूत्र को स्थान-स्थान पर शीर्षक देकर जोड़ा है जैसे मंगलाचरण, उद्धव का मथुरा से व्रज जाना, उद्धव की व्रजयात्रा, उद्धव का व्रज में पहुंचना, उद्धव के व्रजवासियों से वचन, उद्धव की व्रजविदाई ... आदि ।

काव्यपक्ष की भांति इस काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष भी बड़ा ही सशक्त एवं प्रबल है । शुद्ध, परिमार्जित व चमत्कारपूर्ण व्रजभाषा में काव्य की रचना हुई है । अनुप्रास की छटा काव्य में यत्र-तत्र-सर्वत्र विद्यमान है । रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति जैसे अनेकों अलंकारों का प्रयोग इस काव्य में हुआ है । विप्रलंभ शृंगार का संपूर्ण परिपाक प्रस्तुत काव्य में हुआ है । एक खण्डकाव्य की दृष्टि से जगन्नाथदास रत्नाकर का काव्य 'उद्धवशतक' सफल है । 'उनकी रचना में उनका नया अभ्यास, नया प्रबन्ध-कौशल और नये बुद्धिवादी युग का व्यक्तित्व दिखायी देता है ।'[२]

चितौड़ की चिता (रामकुमार वर्मा)

श्री रामकुमार वर्मा का एक वर्णन प्रधान ऐतिहासिक खण्डकाव्य है 'चितौड़ की चिता' । सन् १९२९ में यह काव्य प्रकाशित हुआ । राजपूती निडरता व वीरता प्रदर्शन के

१- हमारे कवि - राजेन्द्रसिंह गौड़, पृ० २१२.

२- हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी - आचार्य वाजपेयी, पृ०

लिए चित्तौड़ खूब ख्यात प्राप्त है । प्रस्तुत काव्य में चित्तौड़ की राजपूतनी के जौहर होने की मार्मिक कथा वर्णित है । चित्तौड़ की राजगद्दी पर वीर राणा संग्रामसिंह आरूढ़ हो गये और नवोढ़ा करुणा के साथ हास-विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे । अकस्मात् रंग में भंग हो गया । मुगल सम्राट बाबर के युद्धाह्वान ने चित्तौड़ के हर्ष को मिट्टी में मिला दिया । वीर राणा ने बाबर की अधीनता कभी भी ग्रहण न करने का तथा युद्ध क्षेत्र में वीर मृत्यु को ग्रहण करने का दृढ़ प्रण किया ।

बड़ा भारी संग्राम हुआ और युद्धक्षेत्र में अपनी अनुपम वीरता व पराक्रम से राणा ने शत्रु को चकाचौंध कर दिया, पर संख्या की न्यूनता के कारण राजपूतों को हार ही हाथ आयी । राणा घायल हो गये और वीरगति को प्राप्त हुए । दासी के मुंह से राणा की वीरगति का समाचार पाकर रानी करुणा अतीव दुःखिनी हुईं । इस दुःख में भी प्रकाश किरण की भांति उस की गोदी में राणा का प्रतिरूप बालक उदयसिंह था । नवजात बालक ने रानी करुणा के जीवन को फिर से सुखपूर्ण किया ।

पुत्र की वर्षगांठ का दिन आ गया । समस्त चित्तौड़ आनन्द सागर में लहराने लगा । राणा के अभाव में राज्य में सब कहीं अत्याचार सिर उठाने लगे थे । चित्तौड़ की अशांति से अवगत बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण करने की ठानी । महारानी करुणा ने हुमायूं से अभय प्रार्थना की । कई बार बहादुरशाह द्वारा पराजित राजा हुमायूं ने रानी को अभयदान का वचन दे दिया । रानी करुणा हुमायूं की सेना की प्रतीक्षा कर रही थी कि बहादुरशाह तूफान की भांति आ धमका । घोरतम युद्ध हुआ । असंख्य वीर रण-भूमि में धाराशाई हुए ।

चित्तौड़ के राजमहलों में चिताएं धधक-धधक कर जलने लगीं । क्षत्राणियों ने सर्वविध शृंगार किया, चिता सजायीं और अपने पतियों का स्मरण करके चिता में कूद पड़ीं । रानी करुणा ने अपने प्यारे पुत्र को चूम लिया और जलती चिता की भभकती ज्वाला के भीतर समेट गयी । चित्तौड़ की पराजय व बहादुरशाह की जीत के बाद ही हुमायूं चित्तौड़ पहुंच सका । उसने बहादुरशाह को हराया, पर अपनी जीत पर हर्ष का अनुभव उन्हें न

हुआ । क्षत्राणियों के जौहर का समाचार पाकर वे शोकाभिभूत हो गये ।

प्रस्तुत काव्य में चित्तौड़ के राजपूतों की वीरता, क्षत्राणियों का जौहरव्रत अपने स्वाभिमान और सतीत्वपालन का जीता-जागता चित्र उपस्थित है । कथानक ख्यात प्राप्त है इसलिए कि वह ऐतिहासिक है । पात्रों के चरित्र चित्रण की ओर भी खण्डकाव्यकार का ध्यान रहा है। प्रस्तुत काव्य में मुख्य रूप से करुण एवं वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है । कहीं कहीं शृंगार रस (द्वितीय सर्ग) का भी पुट दर्शनीय है । शृंगाररस से काव्य का प्रारंभ और करुण में इसकी समाप्ति होती है । काव्य में एक ही छन्द हरिगीतिका प्रयुक्त है । काव्य बारह -- प्रस्तावना व उपसंहार को भी मिलाते तो चौदह सर्गों में विभाजित है । परम्परागत काव्य लक्षण के अनुसार खण्डकाव्य में सात सर्ग से अधिक सर्ग न होने चाहिए । इस दृष्टि से यहां दोष कहा जा सकता है । लेकिन केवल सर्ग संख्या काव्य की कसौटी नहीं हो सकती । मध्यकालीन भारतीय शौर्य एवं बलिदान पर आधारित चित्तौड़ की चिता वस्तुत: एक सफल ऐतिहासिक खण्डकाव्य है ।

आत्मोत्सर्ग (सियारामशरण गुप्त)

श्री सियारामशरण गुप्त का काव्य 'आत्मोत्सर्ग' सन् १९३२ ई० में प्रकाशित हुआ । कवि के भित्रवर श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के आत्मोत्सर्ग पर लिखा गया है -- यह काव्य । कानपुर के साम्प्रदायिक दंगे में अपनी बलि चढ़ाने वाले गणेशशंकर विद्यार्थी के श्रद्धांजलि रूप में प्रस्तुत काव्य का प्रणयन हुआ है । साम्प्रदायिकता की विषाग्नि बुझाने के लिए विद्यार्थी ने अपने प्राणों की आहुति दी । आपकी वीर मृत्यु की सबने प्रशंसा की । विद्यार्थी जी से कवि को काव्यरचना में सतत प्रोत्साहन मिलता था । वस्तुत: आपके बलिदान ने भी कविवर की लेखनी को नयी प्रेरणा दी ।

कानपुर में हिन्दू और मुसलमानों के बीच की साम्प्रदायिकता गर्म हो गयी थी और उनके बीच भयानक दंगे शुरू हुए । हिन्दू और मुसलमान इस दंगे में स्वाहा हुए । गणेश शंकर विद्यार्थी ने इस दंगे को समाप्त कर हिन्दू और मुसलमानों के बीच शाश्वत एकता कायम

करने का प्रयत्न किया । इस प्रयत्न के बीच किसी की छुरी के प्रहार से गणेशशंकर जी की मृत्यु हुई । विद्यार्थी जी के आत्मबलिदान की कथा ही प्रस्तुत खण्डकाव्य में वर्णित है । सार्वजनिक कल्याण के लिए बलिदान करने का गांधी जी का आदर्श ही काव्यनायक का भी आदर्श है । कवि ने विद्यार्थी के अर्धशून्य व्यक्तित्व का सजीव चित्र खींचा है प्रस्तुत खण्डकाव्य में । `आत्मोत्सर्ग` में जहां एक ओर गणेश शंकर जी के उत्सर्ग की कथा कही गयी है, वहीं दूसरी ओर हिन्दू और इस्लाम धर्म की कट्टरता तथा अन्ध विश्वास पर प्रहार भी किया गया है । हिन्दू-मुस्लिम मैत्री के द्वारा भारत की एकता को सुदृढ बनाये रखने की बात पर भी कवि ने जोर दिया है । काव्य के मूल में राष्ट्रीय भावना का स्वर ही गूंज उठता है ।

एक व्यक्ति के उत्सर्ग की कथा को आधार बनाकर विरचित प्रस्तुत खण्डकाव्य तीन खण्डों में विभक्त है ।

सुहाग (माहेश्वरी सिंह `महेश`) ✓

सन् १६३२ ई० में यह काव्य प्रकाशित हुआ । जीवन के एक सुन्दर चरण--सुहाग की भावात्मक अभिव्यक्ति प्रस्तुत खण्डकाव्य में हुई है । जीवन की उस मादक वेला में पदार्पण होते ही `दो हृदय मिले, एक ही प्राण`। नायक, नायिका की मधुर प्रतीक्षा में रहता है तथा अंत में ऐसा दिन आ गया जब सुहाग की भार मांग पर लिये उसकी प्रणयिनी ने उसे प्रणय की स्वीकृति दी । प्रथम प्रेम-मिलन के अवसर पर पूर्व से नायक कहता है --

`सूर्य मत करना आज प्रभात
आज है प्रथम मिलन की रात ।

रात बीत जाती है, किन्तु कवि के अन्तर में एक कसक उठती है कि --`आह कितनी छोटी थी रात ।` लेकिन इस बीच नायिका मानिनी हो जाती है । नायक के संसर्ग से मुग्धा नायिका, अंत में नायक का अनन्य अंग हो जाती है --

`तेरी ही मैं, तु ही मेरा
तेरी मुझे पढाऊंगी

अपने को खोकर भी तुझमें
खोजूँगी, पा जाऊँगी ।

नायक-नायिका के सुहाग में जो ऐसे विश्वास की आवश्यकता है -- इस ओर कवि संकेत देते हैं ।

`सुहाग` नामक मार्मिक प्रसंग को लेकर कवि ने अपने भावों को जिस प्रबन्धकाव्य का मोड़ दे दिया है, वह सराहनीय ही है । यह संयोग शृंगार का भव्य एवं दिव्य चित्र उपस्थित करने वाला खण्डकाव्य है । संयोग शृंगार के मुख्य पक्ष -- पूर्वराग, मान, मिलन आदि का सुन्दर वर्णन काव्य में हुआ है । यह तो छायावादी शैली का एक शृंगार काव्य है । `भावी पत्नी की चिन्ता में`, `उस दिन` आदि लघु शीर्षकों में कवि के भाव विकसित होते हैं । प्रबन्धत्व का पूरा पूरा पालन काव्य में विराजमान है । अंत में रहस्यवादी संकेत के साथ काव्य की इति है । नायक इतना ही चाहता है कि नायिका कहे कि

`नाथ मैं हूँ तेरी ही सदा`।

लेकिन नायिका का पक्ष है --

`निराकार की मैं पुजारिनी,
पूजूँ क्यों कर यह साकार`।

अंत में `सुहाग` काव्य का सन्देश भी उपस्थित है --

`एक हैं हम दोनों के प्राण
देह दो हैं केवल अनजान`।

प्रसाद का `आँसू` यदि छायावादी शैली का विरह काव्य है तो `सुहाग` ठीक उल्टा है । यह संयोग-शृंगार का काव्य है । `आँसू` की ही भाँति इसकी भी कथातंत्रिका क्षीण है, लेकिन भावाभिव्यक्ति इसमें प्रबन्धत्व को बनाये रखती है ।

सिद्धराज (मैथिलीशरण गुप्त)

`सिद्धराज` काव्य १९३६ ई० में प्रकाशित हुआ । इसमें मध्यकालीन भारत के वीर राजा सिद्धराज जयसिंह की वीरता का उज्ज्वल वर्णन प्रस्तुत हुआ है । सिद्धराज की विजयों का ओजस्वी वर्णन इस काव्य में हुआ है । अपनी माता की इच्छा का आदर करके राजा सोमनाथ महादेव के दर्शनार्थियों पर लगाये जाने वाला कर बन्द कर देता है । राजा के इस तीर्थ यात्राकालमें मालवा के राजा नरवर्मा उसकी राजधानी पाटन पर चढ़ाई कर देता है । वे मालवेश्वर को पराजित भी कर देते हैं । मालवा के अतिरिक्त खंगार, अर्णोराज, सिन्धुराज आदि कई राजाओं को भी हरा देते हैं । इस बीच सिन्धुराज की परित्यक्ता कन्या, रानकदे, जिसे सोरठ के राजा ने ब्याह लिया, को अपनाने का प्रयत्न भी वे करते हैं । रानकदे अपने पति तथा पुत्रों के घातक सिद्धराज को माफ़ी दे देते हैं तथा स्वयं सती हो जाती है । आखिर अपने नैतिक पतन पर उसके मन में ग्लानि हो जाती है तथा वे विजित देशों के साथ पुनः मैत्री स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं ।

सिद्धराज कवि का प्रौढ़ सफल काव्य है । मानव-जीवन के सबल एवं प्रबल पक्ष की स्पष्ट झाँकी काव्य में है । पांच सर्गों में काव्य की कथावस्तु वर्णित है । काव्य में संवादों की अत्यन्त सुन्दर योजना हुई है । कुछ अंशों को छोड़कर समस्त कथानक संवादों द्वारा ही विकसित हुआ है । अतुकांत अमित्राक्षर छंद का प्रयोग ही काव्य में हुआ है ।

तुलसीदास (सूर्यकांत त्रिपाठी `निराला`)

हिन्दी के प्रमुख छायावादी कवि श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का एक अनूठा काव्यग्रंथ है `तुलसीदास` । प्रस्तुत काव्य का प्रथम प्रकाशन सन् १९३८ में हुआ । अपनी पत्नी पर गोस्वामी तुलसीदास की अमित आसक्ति तथा उसी के द्वारा राम-भक्ति की ओर निर्देश की कथा तो खूब प्रचलित है । इस कथा की क्षीण तंत्रियों पर निराला ने अपने खण्डकाव्य का प्रणयन किया है । कवि का ध्येय केवल कथा का उद्घाटन नहीं, उनका क्षेत्र नितांत नवीन है । रहस्यवाद का कथा-रूप में उसने एक नवीन चित्र खींचा है । मनोवैज्ञानिक तथ्यों का निरूपण ही कवि का लक्ष्य रहा है ।

काव्य का प्रारंभ भारतीय संस्कृति के सूर्यास्त की सूचना से होता है। मुसलमानों का शासन समस्त उत्तर भारत में व्याप्त रहा है। इसके बाद तुलसीदास की जन्मभूमि राजापुर का वर्णन है। वहाँ एक दिन वे अपने मित्रों के साथ चित्रकूट जाते हैं। प्रकृति से उसे नवजागरण का सन्देश प्राप्त होता है। तुलसीदास की चेतना ऊर्ध्वमुखी हो जाती है। वे दुनियाँ के तिमिर को छेद कर सत्य के प्रकाश-लोक खोज निकालने की ठान लेते हैं। शीघ्र ही उनके सामने तारिका के समान चमकती अपनी पत्नी रत्नावली की छवि दिखाई पड़ती है और तुलसीदास भी उस सम्मोहक छवि पर मुग्ध हो जाते हैं। तुलसीदास का मानस जो कभी तक ऊर्ध्वमुखी था वह पुनः नीचे की ओर उतर आया। रत्नावली की मोहक छवि से परिपूरित उनका मन रंग-बिरंगी कल्पनाओं से भर जाता है। आगे के छन्दों में रत्नावली के रूप-गुण-वैभव का वर्णन है।

रत्नावली बहुत दिनों से नैहर नहीं गयी थीं। एक दिन अपने भाई के साथ वह नैहर चली जाती है। एक पल भी पत्नी विछोह सहन न कर सकने वाला पति आधी रात के समय पत्नी के घर पहुँचता है। रात में एकांत मिलन हो जाता है लेकिन रत्नावली का हृदय ग्लानि व लज्जा से भरा हुआ था। वह साक्षात् योगिनी की भाँति तुलसीदास के सम्मुख खड़ी थी, जिसने तुलसीदास को फटकारते हुए श्रीराम की ओर उन्मुख होने का संकेत दिया। तुलसीदास की कामवासना, रत्नावली की योगाग्नि के सामने जलकर राख हो जाती है। सरस्वती के रूप में रत्नावली की छवि पुनः तुलसीदास के मन को ऊर्ध्वमुखी करती है। आकाश की चमकने वाली तारिका में रत्नावली का सरस्वती रूप विलीन हो जाता है। तुलसीदास के मन का द्वन्द्व मिट जाता है। उन्हें पुनः आत्मबोध होता है तो उनकी चेतना भारत की महिमा से भर उठती है। ज्ञान की दीप्ति को जन-जीवन में बिखेरने हेतु तुलसी घर से निकल पड़ते हैं।

तुलसीदास के अपनी पत्नी रत्नावली के प्रति आसक्ति, उनके विरह तथा विरक्ति के प्रचलित वृत्त के आधार पर प्रस्तुत काव्यवस्तु की संयोजना हुई है। हिन्दू संस्कृति के प्रति

निराला जी की बड़ी निष्ठा थी तथा गोस्वामी तुलसीदास मरणासन्न हिन्दू संस्कृति के पुनः संरक्षकों में प्रमुख हैं। हिन्दू संस्कृति के प्रति अपनी आस्था व श्रद्धा प्रस्तुत काव्य के द्वारा निराला जी ने प्रकट की है। छः छः पंक्तियों के एक सौ छन्दों में इस काव्य का सृजन हुआ है। इसके काव्य रूप के सम्बन्ध में आलोचकों के बीच बड़ा भारी मतभेद है। आचार्य वाजपेयी के अनुसार डा० शिवकुमार मिश्र भी इस लम्बी रचना को 'आख्यानकपरक दीर्घ प्रगीत' माना है।....' ऐसी स्थिति में आचार्य वाजपेयी का यह मत कि 'तुलसीदास' एक आख्यानपरक दीर्घ प्रगीत' कहा जा सकता है, रचना को देखते हुए सर्वांशतः सत्य प्रतीत होता है।'[१]

सचमुच प्रस्तुत काव्य में गोस्वामी तुलसीदास के जीवन के एक विशिष्ट तथा मार्मिक प्रसंग का ही चित्रण हुआ है। आख्यान की उपस्थिति अवश्य है, लेकिन काव्य में तुलसीदास के अन्तर्द्वन्द्वों व जीवन की स्थूल भूमिका से सूक्ष्म मनोजगत की ओर उनके प्रयाण का मनोवैज्ञानिक चित्रण ही मुख्य है। आख्यान की प्रबन्धात्मकता संयोजना, उसकी ऐतिहासिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि सर्वोपरि काव्य की प्रभावोत्पादकता आदि प्रस्तुत कृति को प्रगीतात्मकता की भावभूमि से निकालकर प्रबन्धकाव्य की इतिवृत्तात्मक भूमि पर ला खड़ी कर देती है। कथावस्तु से अधिक पात्रों के मानसिक द्वन्द्वों व संघर्षों का चित्रण तथा पात्रों का मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण छायावादी खण्डकाव्यों की प्रमुख प्रवृत्ति हो गयी है। यही मनोविश्लेषण की प्रमुख प्रवृत्ति प्रस्तुत काव्य में भी विद्यमान है। सचमुच तुलसीदास के जीवन के एक मार्मिक प्रसंग को नवजीवन देकर मानसिक भावभूमि को प्रमुख स्थान देकर प्रबन्धत्व का पालन करते हुए प्रणीत निरालाजी का यह काव्य 'तुलसीदास' सचमुच हिन्दी के छायावादी खण्डकाव्यों में प्रमुख है -- हिन्दी खण्डकाव्य परम्परा में एक नवीन प्रयोग है। डा० सत्यदेव चौधरी ने भी इसे 'खण्डकाव्य' ही स्वीकारा है। 'निराला जी की इस कृति को खण्डकाव्य कहा जा सकता है।'[२]

१- हिन्दी के श्रेष्ठ काव्यों का मूल्यांकन : सं० यश गुलाटी
तुलसीदास : डा० शिवकुमार मिश्र, पृ० ५३४.

२- प्रतिनिधि कवि : डा० सत्यदेव चौधरी , पृ० १८२.

प्रस्तुत खण्डकाव्य की शैली भी छायावाद की विशेषताओं से अभिमण्डित है। काव्य-भाषा लाक्षणिक तथा अलंकृत है एवं भावचित्रों को यथावत् चित्रित करने में सर्वथा सफल भी है। इसकी विधा छायावाद तथा रहस्यवाद की प्रतीकमयी शैली को लिये है। चरित्र-चित्रण के साथ ऐतिहासिकता भी सुरक्षित है। तत्कालीन सामाजिक व राजनैतिक गतिविधियों का चित्रण भी रोचक हुआ है। कथोपकथन भी सजीव है, छन्दों में प्रवाह है तथा अलंकारों की सुन्दरता अपने आप में निराली है।

छायावादी विशेषताओं से विभूषित निराला जी का यह खण्डकाव्य 'तुलसी-दास' वस्तुतः कला की कसौटी पर भी खरा उतरने वाला है। कवि का क्षेत्र नया है। रहस्यवाद का कथा रूप में आपने एक अभिनव चित्र खींचा है। मनोवैज्ञानिक तथ्यों का निरूपण ही काव्य का ध्येय है।

नहुष (मैथिलीशरण गुप्त)

'नहुष' काव्य सन् १९४० ई० में प्रकाशित हुआ था। 'महाभारत' के उद्योगपर्व का एक लघु उपाख्यान ही गुप्त जी के प्रस्तुत खण्डकाव्य का आधार है।[१] इसमें इन्द्र पद-प्राप्त नहुष के उत्थान तथा पतन का चित्रण हुआ है। गुप्त जी ने महाभारत के कथासूत्र को मौलिकता की छाप देकर अपने सिद्धान्तों के अनुरूप ढाल दिया है। महाभारत में कथा वर्णन प्रमुख तथा मानसिक संघर्षों का चित्रण गौण है। प्रस्तुत काव्य में कथा सात शीर्षकों में विभक्त है। शची-प्रसंग से कथा का प्रारंभ होता है। शची के पति-वियोग और सतीत्व के आदर्श का चित्रण कवि ने मौलिक ढंग से किया है। नारद-प्रसंग में मानव के कर्तव्य की अभिव्यक्ति तथा उर्वशी-प्रसंग देवों के विलास-शृंगार का सुन्दर चित्रण हुआ है। उर्वशी मानव की उद्योगशीलता की अनिवार्यता को ही देवत्व से अधिक प्रतिष्ठित करती है। नहुष का प्रेम प्रसंग एक वैधानिक तथ्य का प्रकाशन करता है और स्वर्ग की सभा भी उसके

१- देवीभागवतम् - अष्टम सर्ग में भी यह प्रसंग आया है।

प्रतिकूल नहीं होती । फलतः नहुष प्रणय की भिक्षा करने शची के पास जाता है किन्तु मार्ग में ही वह पतित हो जाता है । नहुष तो मानव का आदर्श है । असंयमित कामभाव मानवजीवन का घोर कलुष है । इस असंयम से स्वत्व की रक्षा करने पर ही व्यक्ति स्वर्ग एवं मोक्ष प्राप्त करने योग्य हो सकता है ।

प्रस्तुत खण्डकाव्य में कवि ने मानवतावादी विचारधारा का चरम उत्कर्ष दिखाया है । समस्त काव्य शची एवं नहुष के मानसिक घात-प्रतिघातों तथा अन्तर्द्वन्द्वों से आपूर्ण है । काव्यरूप की दृष्टि से यह विचारप्रधान खण्डकाव्यों की श्रेणी में आ जाता है । काव्य मंगलाचरण से शुरू होता है । `नहुष` खण्ड से आरंभ होकर उनके `पतन` तक का वर्णन सात सर्गों या खण्डों में हुआ है । संपूर्ण `नहुष` काव्य कुकान्त अमित्राक्षर या अन्तानुप्रासहीन छन्द की उत्तरार्णार्द्ध में बना है । अलंकार युक्त एवं चित्रात्मक काव्यशैली में गुप्त जी का प्रस्तुत खण्डकाव्य अधिक सुन्दर बना है ।

अभिमन्यु पराक्रम (देवीप्रसाद वरनवाल)

सन् १९५० ई० में इस खण्डकाव्य का प्रथम प्रकाशन हुआ । `महाभारत` के अभिमन्यु-वध प्रसंग पर आधारित है इस काव्य का कथानक । आचार्य द्रोण का व्यूहनिर्माण, दुर्योधन के पांडवपक्षियों को व्यूह भेदन के लिए ललकारना, अर्जुन की अनुपस्थिति में उनके वीर पुत्र अभिमन्यु द्वारा ललकार स्वीकारना, चक्रव्यूह में शेर की भाँति अपना पराक्रम दिखाना, अन्त में वीरगति पाना आदि घटनाओं का वर्णन काव्य में हुआ है । अभिमन्यु के आत्म-बलिदान तथा लोकोपकार की भावना ही काव्यसृजन की मूल प्रेरणा है । क्षात्रधर्म का अनुष्ठान करके, वीरगति को प्राप्त करने वाले सोलहवर्षीय वीर अभिमन्यु के चरित्र का उज्ज्वल चित्रण काव्य में हुआ है । अभिमन्यु के पराक्रम का चित्रण कवि ने तन्मय होकर किया है कि पंक्ति-पंक्ति से वीर रस टपक पड़ता है। काव्यशैली भी एक वीर रसपूर्ण काव्य के लिए नितान्त उपयुक्त एवं ओजस्वी है । भाव एवं कलापक्ष का मणि-कांचन संयोग प्रस्तुत खण्ड-काव्य में विद्यमान है ।

छायावादी खण्डकाव्य

सामान्य विशेषताएं

छायावादी काव्य की अपनी निजी विशेषताएं तत्काल में अवतीर्ण प्रस्तुत काव्य-रूप में भी परिलक्षित होती हैं। छायावादी खण्डकाव्य अपने भाव एवं रूप में क्रांति लेकर ही अवतरित हुए। वहिर्जगत् की अपेक्षा काव्य में अन्तर्जगत का प्राधान्य हो गया। अन्तर्जगत को सुस्पष्ट करने योग्य शब्दावली एवं शैली का प्रयोग भी हो गया तो ये काव्य-भाव एवं रूप दोनों क्षेत्रों में क्रांति लाये। इस काल में छायावाद पूर्व काल की परम्परा के अनुवर्तन करने वाले कई काव्य विरचित हुए। जय संहार, पंचवटी, सैरन्ध्री, वनवास आदि ऐसे ही काव्य हैं। छायावाद काल में खण्डकाव्य क्षेत्र में नये प्रयोग करने वाले प्रसाद जी, पन्त जी तथा निराला जी हुए हैं। प्रसाद जी प्रणीत आंसू, पन्तजी की ग्रंथि एवं निराला निर्मित 'तुलसीदास' तीनों छायावादी काव्यशैली के चरमोत्कर्ष के द्योतक नये प्रयोग के खण्ड-काव्य हैं। स्थूल कथा तत्व का अभाव ही इन काव्यों की प्रमुख विशेषता है। स्थूल कथा-वस्तु के स्थान पर क्षीण कथासंकेतों पर तथा कभी कभी भावों की कड़ियों पर काव्य विरचित हुए। उपर्युक्त तीनों खण्डकाव्यों में कथावस्तु अवश्य ही बहुत क्षीण है, उनमें भावों तथा विचारों की ही प्रमुखता है। प्रथम दोनों काव्यों में भावों के द्वारा काव्य की वस्तु संयोजित है तथा अंतिम में मनोवैज्ञानिक विचार विश्लेषणों की प्रमुखता है। मनोवैज्ञानिक विचार विश्लेषण इस काल के काव्यों की अनूठी उपलब्धि है। यही मनोविश्लेषणात्मकता गुप्त जी के खण्डकाव्य 'नहुष' (१९४०) में भी द्रष्टव्य है। इस काल के खण्डकाव्यों की कथावस्तु पौराणिक, ऐतिहासिक तथा काल्पनिक है। पुराणों के आधार पर निर्मित खण्डकाव्यों में भी नवीन उद्भावनाओं के उद्घाटन तथा कथावस्तु का कालदेशानुरूप आविष्करण में कवियों का पूरा-पूरा ध्यान रहा है। पंचवटी, जयहार, वनवास, शकित आदि खण्डकाव्यों का आधार पुराण है। आंसू, ग्रंथि जैसे काव्य काल्पनिक कथा-वस्तुओं पर विरचित हुए। इनमें स्थूल कथावस्तु का नितांत अभाव है। इसमें घटनाएं व कथा-प्रसंग केवल कवि के लिए सहारा मात्र रह जाते हैं, कवि अपनी आंतरिक अनुभूतियों की अभि-

व्यक्ति के साधन के रूप में उसे चुनते हैं । कहीं-कहीं कथावस्तु घटकर लुप्त सी रहती है, तथा उससे प्रवाहित भाव ही उमड़ते हैं । इस प्रकार के भावों व विचारों के प्रवाह के बीच कहीं कहीं काव्य की क्षीण कथातंत्री लुप्त हो जाती है तथा यहीं पर काव्य के प्रबन्धत्व का प्रश्न सिर उठाता है । यह प्रश्न भी तब सुलझ जाता है जबकि प्रबन्धत्व को केवल कथा का न मान, भावों व विचारों के सम्बन्ध को भी मानें । इस काल के कतिपय काव्य सर्गबद्ध विरचित हुए तथा कतिपय सर्गरहित भी । अधिकांश काव्यों में मंगलाचरण का पालन भी नहीं हुआ है । इस काल की काव्यशैली नितांत अनूठी है । सुन्दर सुललित पद शैली का प्रयोग एवं रूढ़ उपमान-उपमेयों के स्थान पर अभिनव उपमान-उपमेयों का आगमन आदि छायावादी खण्डकाव्य शैली की विशेषताएं हैं । इस समय के अधिकांश काव्य छन्दबद्ध ही हैं । निराला ने अपने काव्य `तुलसीदास` की रचना मुक्त छन्द में करके खण्डकाव्य में भी मुक्त छन्द का स्वागत किया । छायावादी काव्यशैली का निदर्शन आंसू, गुंजन, ग्रंथि जैसे काव्यों में उपलब्ध है ।

[ग]

छायावादोत्तर युग के खण्डकाव्य

काबा और कर्बला (मैथिलीशरण गुप्त)

"काबा और कर्बला" का प्रकाशन सन् १९४२ ई० में हुआ । प्रस्तुत काव्य का द्वितीय खंड "कर्बला" एक स्वतंत्र खण्डकाव्य है । इसमें कर्बला नामक स्थान पर स्वधर्मनिष्ठा पालन के लिए की गयी आत्माहुति का मार्मिक वर्णन हुआ है । इस काव्य में इमाम हुसैन के त्यागी जीवन का आदर्श चित्र उपस्थित है । स्वधर्म-पालन के लिए मुहम्मद साहब के नाती इमाम हुसैन को अपने परिजनों, अनुचरों एवं स्वयं अपनी कुर्बानी चढ़ानी पड़ी । कवि ने इस्लाम धर्म के हेतु जो कुर्बानी हुई -- उसका उदारता, करुणा तथा श्रद्धा के साथ वर्णन किया है । कर्बला के मरसिये में हुई आर्यों (हिन्दुओं) की आत्मबलि का भी उल्लेख प्रस्तुत काव्य में है ।

कुरुक्षेत्र (श्री रामधारीसिंह "दिनकर")

दिनकर जी का यह लोकप्रिय काव्य सन् १९४६ ई० में प्रकाशित हुआ । इसका विषय महाभारत युद्ध के बाद युधिष्ठिर हृदय में उठने वाला निर्वेद है । "कुरुक्षेत्र काव्य में युद्ध की मीमांसा हुई है । युद्ध एवं शांति के विषय पर विचार करने वाला यह काव्य भारतीय भाषाओं में पहला है ।"[१] प्रस्तुत काव्य में युधिष्ठिर और भीष्म ये ही दो प्रमुख पात्र हैं जिनके मुंह से कवि दिनकर अपने विचार व्यक्त करते हैं । महाभारत युद्ध का भीषण विनाश देखकर दुःखी युधिष्ठिर पितामह भीष्म के निकट जाकर अपने उद्गार व्यक्त करते हैं । भीष्म उन्हें समझा-बुझाकर युद्ध की आवश्यकता के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हैं ।

१- दिनकर साहित्य - एक सामान्य परिचय, पृ० ३७ (आशय)

कविवर दिनकर जी के युद्ध सम्बन्धी विचार ही प्रस्तुत काव्य में व्यक्त हुए हैं । काव्य के सातों सर्ग अपने में स्वतंत्र होते हुए भी सम्पूर्ण ग्रन्थ में कथानक का तारतम्य अवश्य है । इस तारतम्य के कारण `कुरुक्षेत्र` एक विचार प्रधान खण्डकाव्य कहा जा सकता है । युद्ध जैसी जटिल समस्या को सुलझाने का सफल प्रयास दिनकर जी ने प्रस्तुत काव्य में किया है ।

`कारा` (श्री धर्मचन्द्र `सुमन`)

प्रस्तुत इतिवृत्तात्मक राजनैतिक खण्डकाव्य का प्रकाशन सन् १९५६ ई० में हुआ । भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि पर इसकी कथा आधारित है । एक देशभक्त की हैसियत से कवि ने अपनी मातृभूमि के जीवन-मरण के संघर्ष के समय कष्ट सहन किया तथा साथ ही अपने कारागृह-वास के दिनों की अनुभूतियों का अभिव्यक्ति `कारा` खण्डकाव्य में की है । सन् १९४२ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास का चिरस्मरणीय समय है । ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध भारतीयों ने जमकर संघर्ष किया । कवि `सुमन` जी भी अन्य नेताओं के समान पंजाब सरकार द्वारा बन्दी बना लिये गये । अपने बन्दी जीवन के कटु अनुभवों को आपने `कारा` में व्यक्त किया है । भारतीय जनजागृति का भी सजीव चित्र काव्य में उपस्थित है । ब्रिटिश सरकार के समय के कालकोठरी के समान बन्दीगृहों का नग्न चित्र प्रस्तुत काव्य में प्रस्तुत हुआ है । काव्य की भाषा शैली सरल, सरस एवं भावानुकूल है । खण्डकाव्य कला की कसौटी पर भी `कारा` खरा उतरने वाला है ।

नकुल (सियारामशरण गुप्त)

सियारामशरण गुप्त जी का खण्डकाव्य `नकुल` सन् १९४६ में विरचित हुआ । महाभारत के `वनपर्व` की कथा पर आधारित एक खण्डकाव्य है यह । कविवर ने युगानुकूल परिवर्तन के साथ प्रस्तुत कथा को खण्डकाव्य का रूप दे दिया है । पाँचों पाण्डव और द्रौपदी अपने बारह वर्ष का वनवास समाप्त करके अज्ञातवास की तैयारी में थे । तब एक महत्त्वपूर्ण घटना घटती है । पाण्डवों की कुटिया के पास रहने वाले एक ब्राह्मण तपस्वी की अरणि-

मथनिका को लेकर अकस्मात् ही एक हिरण भागा । पाण्डवों की कुटी में तब केवल युधिष्ठिर ही उपस्थित थे, शेष चारों पाण्डव द्रौपदी के साथ अमृतहृद देखने गये थे । ब्राह्मण की विनती करने पर युधिष्ठिर ने हिरण का पीछा किया । पीछा करते करते प्यास बुझाने हेतु वे मणिभद्र नामक यक्ष के आश्रम पहुंचते हैं, हरिण उसी आश्रम का था । यक्ष ने तपस्वी को मथनिका लौटा दी । उधर दुर्योधन के घर दुर्जय और क्रथबाहु अमृतहृद के पानी को विषलिप्त कर देते हैं और छल से पाण्डवों व द्रौपदी को उस ओर निमंत्रित करते हैं । पुरस्कार के प्रश्न के बाते ही दोनों के बीच लड़ाई छिड़ती है तथा दोनों एक दूसरे पर विष का प्रयोग करके मर जाते हैं । सूर्यास्त के समय युधिष्ठिर और मणिभद्र अमृतहृद पहुंच गये तो उसने अपने भाइयों को अचेत पाया । मणिभद्र के पास संजीवनी बूटी का एक कण विद्यमान था, जिसके प्रयोग से केवल एक मृतक व्यक्ति जी सकता था । युधिष्ठिर ने तुरन्त नकुल का नाम बता दिया । संजीवन कण अनाथ था, इस कारण दूसरे भाई तथा द्रौपदी भी नवजन्म प्राप्त होते हैं । इस काव्य में बड़े भाई की भाव ग्रंथि की स्पष्ट झांकी है ।

<u>विषपान</u> (श्री सोहनलाल द्विवेदी)

श्री सोहनलाल द्विवेदी का काव्य विषपान का प्रथम संस्करण सन् १९५६ में निकला । क्षीर-सागर-मंथन के समय निकले संहारकारी कालकूट विष का पान करने वाले शिवजी का चित्र काव्य में उपस्थित है । दैवासुर संग्राम में पराजित देव, दानवों से मिलकर अमृत प्राप्ति हेतु क्षीर सागर का मंथन करते हैं । मंदर पर्वत मंथन दण्ड बना तथा वासुकि-सर्प बना रज्जु । अमृत पान की इच्छा से प्रेरित देव एवं दानव जीजान से सागर मंथन में लगे । दोनों ही पक्ष के व्यक्ति थक गये पर अमृत नहीं निकला । इतने में वासुकी सर्प कालकूट उगलने लगा । संहारकारी गरल के उद्गम से सब भयभीत हुए तथा विश्व भी झुलसने लगा । देव दनुज भाग कर शिवजी की शरण में गये । पार्वती ने भव मंगल के लिए पति को क्रियाशील होने की प्रेरणा दी । हिमालय से मृत्युंजय क्षीर सागर आये तथा हलाहल को हाथों में लेकर पी लिया । गरल पीकर भी `मृत्योर्मा अमृतं गमय` की भांति शिवजी मृत्यु से अमृत पथ की ओर बढ़े ।

शिवजी के विषपान की पौराणिक कथा ही काव्य में वर्णित है । 'पराजय', 'आकाशवाणी' जैसे लघु शीर्षकों में कथावस्तु का संयोजन हुआ है । जगमंगल हेतु शिव को हलाहल पीने की प्रेरणा पार्वती देती है । नारी की इस प्रेरणादायिनी शक्ति का उल्लेख काव्य का मार्मिक अंश है । काव्यांत में शिव स्तुति का एक गीत भी है । १६, १४ मात्राओं के ताटंक छंद में काव्य की रचना हुई है ।

बंगाल का काल (हरिवंशराय बच्चन)
- - - - - - - - - - - -

'बंगाल का काल' बच्चन का एक लोकप्रिय खण्डकाव्य है जिसकी रचना कवि ने सन् १९४३ ई० में की । इसका प्रथम संस्करण सन् १९४६ में निकला । सन् १९४३ में बंगाल में जो भीषण अकाल पड़ा था, उसके विषय पर निर्मित है प्रस्तुत काव्य ।

बंगाल के अकाल से आकुल कवि के हार्दिक विचार ही प्रस्तुत कृति में अभिव्यक्त हुए हैं । कवि के विद्रोही विचार भी बीच बीच में प्रकट हुए हैं । प्रस्तुत कृति की रचना के बारे में आप स्वयं लिखते हैं -- 'बंगाल का अकाल बहिर्मुखी उद्भावना का परिणाम था । सन् १९४३ के प्रारंभ में बंगाल के अकाल का रोमांचकारी विवरण समाचार पत्रों में आने लगा । स्वाभाविक था कि इस विषय पर कवियों की प्रतिक्रिया दो प्रकार की हो सकती थी । एक तो बंगाल के दुर्दिन का वर्णन करना और उसके प्रति देश की सहानुभूति जगाना । प्रायः कवियों ने यही किया, क्योंकि १९४२ के उग्र दमन ने लेखकों की निबों की नोक तोड़ दी थी । ...... मेरी प्रतिक्रिया दूसरे प्रकार की हुई । बंगाल की दयनीय दशा पर मैं इतना विचलित नहीं हुआ जितना उसकी नपुंसक सहिष्णुता पर, जिससे उसने मानवी स्वार्थ-प्रेरित इस दानवी रीति-नीति को मष्ट मारकर झेल लिया ।'[1]

लगभग एक हजार पंक्तियों का यह छोटा सा काव्यग्रंथ करीब ३६ घंटों में रचित हुआ था । इसकी लोकप्रियता इतनी बढ़ गयी कि बंगला में इसका अनुवाद 'कालेर-कबले बांगला' (श्री भूपेन्द्रनाथ दास - अनुवादक) सन् १९५८ में प्रकाशित हुआ ।

- - - - - - - - - - - -

१- बंगाल का काल - ३ संस्करण की भूमिका - 'अपने पाठकों से', पृ० ८-९.

अजित (मैथिलीशरण गुप्त)

सन् १९४७ ई० में `अजित` काव्य का प्रकाशन हुआ । आत्मकथात्मक शैली में रचा गया समसामयिक जीवन से सम्बद्ध एक चरित्रप्रधान खण्डकाव्य है `अजित` । अजित एक मौरूसी कृषक का विवाहित युवक पुत्र है । गांव का ज़मींदार अजित के पिता का `बाकना ताल` नामक खेत हथियाने के इरादे से पुलिस से मिलकर उसे एक वर्ष तक जेल भिजवा देता है । उसे जेल में अनेक अपराधियों से परिचित होने तथा कारागृह के नरक तुल्य जीवन से अवगत होने का अवसर प्राप्त होता है । अपनी मृत्यु के अवसर पर `ताल` ज़मींदार को देकर अजित जेलविमुक्त हो जाता है । घर लौटने पर पिता की मृत्यु हो गयी थी, और पता चला कि पत्नी भी किसी नदी में कूद गयी है । अजित अपने ममेरे भाई धनराज से मिलकर आतंकवादी बनकर घर से निकल पड़ता है । बीच में उसका मिलन ज़मींदार के पुत्र रज्जू से होता है जिससे पता चलता है कि उसी के अत्याचार के कारण उसकी पत्नी को नदी में कूदना पड़ा है । जबकि मदान्ध एवं क्रुद्ध अजित रज्जू को मारने के लिए उद्यत हो जाता है तब दैवयोग से अजित की पत्नी आ जाती है तथा अपने पति को रोक लेती है । क्रांतिकारी दल के निर्देशक बाबजी से उसे मालूम होता है उसी ने ही नदी में डूबती हुई उसकी गर्भिणी पत्नी की रक्षा की है तथा वह पुत्रवती सुरक्षित है । आखिर अपने ग्रामवासियों के उद्धार करने के साहसिक प्रयत्नों में वह मग्न रहता है । जीवन के संघर्षों और कठिनाइयों की कहानी ही प्रस्तुत खण्डकाव्य में वर्णित है ।

बरगद की बेटी (श्री उपेन्द्रनाथ अश्क)

अश्क जी के काव्य "बरगद की बेटी" का प्रथम संस्करण निकला सन् १९४७ ई० में । पंजाब के पीलन गांव में प्रचलित एक लोककथा के आधार पर विरचित एक खण्डकाव्य है यह । काव्य-नायिका लहरा एक किसान की बेटी है । गांव के ज़मींदार का बेटा कालेज में पढ़ने वाला युवक अनवर उस पर डोरा डालता है तथा उस भोली भाली अल्हड़ बाला का मन अपनी ओर खींच लेता है । अनवर का नौकर सादिक लहरा को जी-जान से प्यार करता

है । बिरादरी एवं धर्म समानता के आधार पर लहरा पर वह अपना अधिकार समझता है । लेकिन अनवर के प्रेम के नशे में मस्त लहरा का मन साधिक के प्रति अनुरक्त नहीं होता है । साधिक का हृदय इस कारण दुःखता व क्षुब्ध होता है । एक दिन जबकि नित्य की भाँति साँझ की नीरवता में ऊसर भूमि में लहरा व अनवर को प्रेमालिंगन में आबद्ध देख लेता है तो साधिक उसके सीने में खंजर भोंक देता है । दूसरे वार में लहरा भी लहू में लथ-पथ होकर गिर पड़ती है । साधिक स्वयं थाना जाता है तथा अपना अपराध स्वीकार करता है । जमींदार के इशारे पर पुलिस - लोग किसानों को बरबाद कर देते हैं तथा घायल लहरा जमींदार के यहाँ लायी जाती है । सावन की तूफानी बाढ़ सरीखी लहरा की मदमस्त जवानी से जमींदार की निरंकुश वासना जग जाती है तथा वह उसे बलात्कार करने पर उतारू हो जाता है । लहरा इस अपमान को सहन न कर, जमींदार का गला घोंट देती है तथा स्वयं भागकर जीवन की नदी में कूदकर आत्महत्या कर लेती है ।

एक भोली-भाली किसान बालिका का करुणापूर्ण जीवन ही प्रस्तुत काव्य का विषय है । ग्राम जीवन की समस्याओं का मार्मिक चित्रण काव्य में हुआ है । सामन्तशाही उत्पीड़न तथा अत्याचारों का सजीव खाका भी प्रस्तुत काव्य में खींचा गया है । पात्रों के मानसिक संघर्षों का भी पूर्ण चित्र काव्य में उपस्थित है ।

लक्ष्मण-शक्ति (राजाराम श्रीवास्तव)

श्री राजाराम श्रीवास्तव का खण्डकाव्य 'लक्ष्मण शक्ति' सन् १९५० ई० में प्रथम प्रकाशित हुआ । राम-कथा के एक प्रसंग पर अवलम्बित है प्रस्तुत रचना । राम-रावण युद्ध के समय लक्ष्मण-शक्ति के अचेत होने तथा पुनः शक्ति प्राप्त करने की कथा इसमें वर्णित है । यह प्रसंग उतना चर्चित तो नहीं है । जैसे सीता की पुनः प्राप्ति के लिए लंका में श्रीरामचन्द्र जी व रावण के बीच घोर युद्ध हो रहा था । श्री-राम के पक्ष में थे भाई बलवन्त लक्ष्मण, हनुमान तथा कपिदल । दूसरी ओर निशाचरों की सेना थी । भीषण संग्राम में निशाचर कई धराशायी हुए । यह देख रावण पुत्र मेघनाद आगे बढ़ा । लक्ष्मण तथा मेघनाद

के बीच बाणों की भयंकर वर्षा हुई । मेघनाद के बाणों को वीर लक्ष्मण के सायकों ने छिन्न-भिन्न किया । क्रुद्ध मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया । ब्रह्म शक्ति लक्ष्मण के हृदय में घुस गयी और लक्ष्मण शक्ति निस्तेज हुई और लक्ष्मण मूर्छित होकर गिर पड़ा । हनुमान ने उसे उठाकर प्रभु रघुवर के निकट पहुँचा दिया । अरुणोदय तक शक्ति उपचार के लिए भेषज लाने का आदेश रघुवर ने हनुमान को दे दिया । हनुमान मलयगिरि सहित आ गया तथा लक्ष्मण को शक्ति पुनः प्राप्त हुई ।

कर्ण (केदारनाथ मिश्र 'प्रभात')

दानवीर व शूर वीर कर्ण के जीवन पर आधारित इस खण्डकाव्य का प्रथम संस्करण सन् १९५० ई० में निकला । कर्ण के जीवन का करुण पक्ष ही प्रस्तुत काव्य में वर्णित है । दूसरे की भूल के कारण समाज में उसे जो घोर अपमान व तिरस्कार सहना पड़ा, उसका चित्र काव्य में खींचा गया है । काव्य के प्रारंभ में ही कौरव-पांडवों के द्वारा रंगशाला में सूत-पुत्र के नाम पर कर्ण के घोर अपमान का चित्रण हुआ है । फिर कौरव-पाण्डव के बीच द्यूत होता है तथा उनके बीच युद्ध का आरंभ होता है । दुर्योधन पक्ष के कर्ण अपने परम शत्रु अर्जुन को मारने का प्रण करता है । कर्ण को अजेय जानकर अर्जुन-पिता देवेन्द्र कर्ण के पास जाकर उनसे रक्षा-बन्धन रूप कर्णकुण्डलों की याचना करता है । यद्यपि पहले ही इस छल की सूचना कर्ण के पिता सूर्य ने दी थी, लेकिन दानी कर्ण अपनी दानशीलता का पालन करता है । श्रीकृष्ण ने संधि करने का प्रयास किया, जो विफल हुआ । माता कुन्ती भी जाकर कर्ण को उसके जन्म सम्बन्धी सारा इतिवृत्त समझाती है तथा पाण्डव पक्ष में लौट आने को कहती है । लेकिन दुर्योधन का अन्न खाने वाला प्रण-पालक कर्ण कौरव पक्ष में ही रहता है । युद्ध के सोलहवें दिन कर्ण कौरव पक्ष के सेनापति हुए । कर्ण रथ का पहिया ठीक कर रहे थे कि कृष्ण के आदेशानुसार अर्जुन ने बाणों से उसे बिद्ध किया । युद्ध में कौरव कुल का सम्पूर्ण विनाश हुआ तो युधिष्ठिर ने स्मृति तर्पण किया । इस वक्त माता कुन्ती ने उनसे कर्ण के उनके ज्येष्ठ भाई होने का सत्य बताया तथा उन्हें भी स्मृति तर्पण चढ़ाने के लिए कहा । युधिष्ठिर के पश्चाताप वर्णन के साथ काव्य समाप्त हो जाता है ।

हिडिम्बा (मैथिलीशरण गुप्त)

गुप्त जी प्रणीत हिडिम्बा काव्य सन् १९५० में प्रकाश में आया । इसका कथानक महाभारत से गृहीत है लेकिन कथा विकास एवं प्रतिपादन शैली नितांत नूतन एवं मौलिक है । कवि ने काव्य-नायिका राक्षसी हिडिम्बा के चरित्र को ऊपर उठाया है तथा उसकी राक्षसी प्रवृत्ति का परिष्कार करके कथा को और स्वाभाविक बनाया है । प्रस्तुत काव्य की रचना आप के काव्य 'जयभारत' की प्रसंग-पुष्टि के रूप में हुई थी लेकिन वह स्वतंत्र रचना बन गयी तथा खण्डकाव्य के रूप को प्राप्त कर गयी । पाँचों पाण्डव अपनी माता सहित लाक्षागृह से बच निकले । एक दिन अचानक राक्षसी हिडिम्बा उनके पास आ जाती है तथा भीम पर आसक्त हो जाती है । भीम तथा हिडिम्बा के बीच का प्रेमालाप चलता है तथा इस बीच उसका संरक्षक भाई हिडिम्ब आ धमकता है । हिडिम्ब तथा भीम के बीच भारी संघर्ष चलता है तथा भीम के हाथों राक्षस मारा जाता है । अपने भाई के संस्कार के बाद वह कुन्ती से भीम की वधू बनने की अनुमति माँगती है । जीवन भर भीम के साहचर्य की प्रार्थना न कर, केवल उनसे एक पुत्र की कामना करती है । माता कुन्ती की आज्ञा के अनुसार भीम हिडिम्बा को ब्याह लेता है तथा उनका पुत्र घटोत्कच पैदा होता है । नायिका का चरित्र परिष्कृत होकर उभर आया है ।

गोरा बध (श्री श्यामनारायण पाण्डेय)

श्री पाण्डेय का यह खण्डकाव्य सन् १९५० ई० में प्रकाशित हुआ । मध्ययुगीन भारतीय वीर योद्धा गोरा की वीरमृत्यु की कथा ही प्रस्तुत काव्य का विषय है । चित्तौड़ की रानी पद्मिनी के रूप में विमुग्ध अलाउद्दीन के साथ युद्ध करने वाला वीर गोरा सचमुच भारतीय वीरों में श्रेष्ठ है । पद्मिनी को प्राप्त करने के लिए अलाउद्दीन छल से पद्मिनी के पति राणा रत्नसेन को अपने यहाँ बुलाकर बन्दी बना देते हैं । पता चलने पर रानी अपने वीर सैनिक गोरा तथा बादल के साथ वहाँ जाती है तथा अपने पति को छुड़ा लेती है । उसके बाद के भीषण युद्ध में वीर योद्धा गोरा वीर मृत्यु को प्राप्त करते हैं ।

मंगलाचरण के साथ प्रस्तुत काव्य का प्रारंभ होता है । काव्य की कथावस्तु का विकास सात सर्गों में हुआ है । वीर गौरा के युद्ध तथा वीर गति का मार्मिक चित्र काव्य में उपस्थित है । वीर एवं करुण रसों की अभिव्यंजना काव्य में हुई है ।

अशोक (रामवचन पाण्डेय)

अशोक खण्डकाव्य का प्रकाशन सन् १९५१ ई० में हुआ । इसमें महान् सम्राट अशोक का जीवन चित्रण तथा उनके चरित्र के अहिंसात्मक पक्ष का उद्घाटन हुआ है । अशोक के कलिंग युद्ध एवं उससे उनके मन में उठे हुए अन्तर्द्वन्द्वों के वर्णन से काव्य शुरू होता है । युद्ध के प्रतिक्रियास्वरूप पाटलिपुत्र में शिवोत्सव हो रहा था तथा अशोक का मन पश्चात्तापतप्त रहा । पश्चात्ताप की अग्नि में जलकर पावन हुए अशोक का मन शांति का अनुभव करता है । शांति की महान् भावना से अभिभूत वे अन्य शासकों को लोकसेवा के आदेश देते हैं तथा गांवों में कूप, चिकित्सालय चिकित्सालय आदि के निर्माण के उपदेश देते हैं । स्वयं अशोक भी देश-देशों में भ्रमण करके स्तूपों स्तंभों तथा शिलालेखों का निर्माण करते हैं तथा अहिंसा का उपदेश देते हैं । इसके उपरांत अहिंसा के प्रचार के लिए पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा के सिंहल गमन तथा संघमित्रा का देहांत एवं अशोक के शोक का वर्णन है ।

प्रस्तुत मुख्य कथा के अतिरिक्त प्रस्तुत काव्य में महेन्द्र कथा, कुणाल कथा आदि उपकथाएं भी आयी हैं । ये सब अशोक के महान जीवन को मूर्त करने में सफल मिले हैं । संपूर्ण रचना में अशोक की चारित्रिक महत्ता एवं संदेशों का प्राधान्य है ।

रश्मिरथ (रामधारीसिंह दिनकर)

श्री दिनकर का काव्य 'रश्मिरथी' सन् १९५२ ई० में प्रकाशित हुआ । 'महाभारत' से इसका कथानक ग्रहण किया गया है । कर्ण के उदात्त जीवन चरित का वर्णन इसमें उज्ज्वल ढंग से हुआ है । रंग-भूमि प्रसंग से काव्य का प्रारंभ होता है । रंगभूमि में कुल-जाति के नाम

पर कर्ण का अपमान होता है । पाण्डवों के प्रति विशेषकर अर्जुन से उनका वैर हो जाता है । अस्त्र-शस्त्र की विद्या सीख लेने के लिए कर्ण द्रोण के पास जाते हैं । सफल मनोरथ न होने पर वे ब्राह्मणकुमार के वेश में परशुराम के पास पहुँचते हैं । रहस्य खुलने पर परशुराम क्रुद्ध हो जाते हैं । कर्ण को अपने अपमान से दुर्योधन ने ही बचाया था । अपनी मित्रता अन्त तक निभाना वह चाहता था । कृष्ण कर्ण को उसके जीवन वृत्त के बारे में अवगत करा के उसे दुर्योधन से विमुख करने का प्रयत्न करते हैं, पर कर्ण अटल रह जाते हैं । उसकी सत्य-वादिता एवं मैत्रीभाव का मार्मिक वर्णन यहाँ पर हुआ है । कर्ण का छद्मवेशी इन्द्र को कवच-कुण्डल दान का प्रसंग भी कर्ण के उदात्त चरित्र को चमत्कृत कर देता है । कर्ण एवं कुन्ती के बीच का मिलन-प्रसंग भी मार्मिक है । माता कुन्ती पाण्डवों को उसका सहोदर बताती है तथा उनके प्राणों की भिक्षा माँगती है । ममत्व भावना कर्ण में जागरित हो जाती है तथा वे माता को अर्जुन को छोड़ अन्य किसी पाण्डव को न मारने का वचन देते हैं । युद्धक्षेत्र में कर्ण के वीरता-प्रदर्शन तथा उनकी मृत्यु का प्रसंग काव्य का सबसे मार्मिक प्रसंग है । कर्ण की युद्ध वीरता से युद्ध भूमि में हाहाकार मच जाता है । युद्ध के बीच कर्ण का रथ चक्र कीचड़ में फँस जाता है । जब कर्ण शस्त्र नीचे रखकर निहत्थे ही रथ चक्र को ऊपर उठाने का प्रयत्न करता है, तो कृष्ण कर्ण को मारने का अर्जुन को संकेत देते हैं । पर अर्जुन उसे धर्म नहीं मानता पर कृष्ण के यों समझाने पर कि --

"क्रिया को छोड़ चिंतन में फँसेगा
उलट कर काल तुझ को ही ग्रसेगा ।"

अर्जुन क्रियाशील हो जाते हैं । निहत्थे कर्ण को अर्जुन बाण भेजकर मार डालते हैं ।

'रश्मिरथी' का कथानक सात सर्गों में विभाजित है । मूल कथा महाभारत के अनुसार चलती है, बीच-बीच में कवि की मौलिक उद्भावनाएँ काव्य को एक नवता प्रदान करती है । काव्य नायक कर्ण का चरित्र उदात्त हुआ है जिसका उज्ज्वल चित्रण कवि ने बड़े मनोयोग से किया है । काव्यनायक के आधार पर ही काव्य नाम भी हुआ है । वीर रस का परिपूर्ण निर्वाह काव्य में हुआ है । भाषा भी प्रवाहमयी एवं साधारण है ।

रूपछाया (रांगेय राघव)

श्री रांगेय राघव का पौराणिक कथा पर आधारित एक खण्डकाव्य है `रूपछाया`। इसमें नारी की रूपछाया में मुग्ध रावण के घमण्ड के नाश एवं नलकूबर तथा रंभा के मिलन की कथा वर्णित है । कुबेर कैकषा का पुत्र नलकूबर अप्सरा रंभा की रूप छवि पर विमुग्ध हो जाता है । रंभा भी उस आकर्षण से बच नहीं सकी । नलकूबर ने दूसरे ही दिन उसे अपने महल में आमंत्रित किया । रंभा के लिए एक दिन का समय भी पहाड़ सा लगा । दूसरे दिन अपनी प्राणप्यारी की प्रतीक्षा की घड़ियाँ गिनते-गिनते नलकूबर ऊब गया । रंभा आ गयी । वह अत्यंत व्याकुल थी । बीच के मार्ग में राक्षस राज रावण ने उसके साथ बला-त्कार किया था। व्याकुल एवं क्रुद्ध नलकूबर ने रावण को शाप दे दिया । अतिचारी रावण शिवजी का परम भक्त था । रंभा और नलकूबर दोनों कैलास पहुँचे । उस समय मदांध रावण ने कैलास पहाड़ को हाथों पर उठा लिया । तब वहीं हाहाकार मच गया । महादेव ने अपने पांव का अंगूठा कैलास से छुआ दिया । रावण दब गया । विवश रावण ने रंभा व नल-कूबर से अपनी करतूत के लिए क्षमा मांगी व प्रतिज्ञा की कि भविष्य में नारी का अपमान नहीं करेगा । रंभा ने उसे माफ़ी दे दी और एक वीणा देकर शिव का स्तुति गान करने को कहा । रावण ने शिव-स्तुति की तथा वह मुक्त हो गया । आखिर रंभा और नलकूबर के मिलन वर्णन से काव्य की इति होती है । पुरुष के घमण्ड तथा नारी के सम्मान का आकर्षक ढंग वर्णन प्रस्तुत काव्य में हुआ । नारी की रूप-वीथि में पड़ने वाले रावण की गति ही काव्य का संदेश है । तीन उच्छ्वासों में प्रस्तुत काव्य की कथावस्तु वर्णित है । काव्यशैली उदात्त है और काव्य लक्षणों का पालन भी इसमें हुआ है ।

चांदनी रात और अजगर (उपेन्द्रनाथ अश्क)

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क का काव्य `चांदनी रात और अजगर` सन् १९५२ में प्रका-शित हुआ । एक चांदनी रात में कवि के मन में उठे जीवन सम्बन्धी संघर्षों का चित्रण काव्य में हुआ है । शरद कालीन पूर्णिमा में रजत ज्योत्स्ना सर्वत्र आच्छादित थी । कवि

अपने घर में वातायन के पास चारपाई पर बैठे वह सुन्दर दृश्य देख रहा था । पास ही उसकी जीवनसंगिनी दिन भर के काम से थक कर सो रही थी । उसकी श्रम-श्लथ दशा विलोकने वाले कवि के मन में असंख्य विचार लहरें उठती हैं । कभी वह अपने भाग्य के बारे में सोचता है । कभी मित्रों के साथ अपने नौका विहार, उल्लास यात्रा आदि की स्मृति करता है । अपने बचपन के साथियों की भी उसे याद आती है । एक ओर अवकाश भोगियों का चित्र आ जाता है तो दूसरी ओर श्रम से श्लथ व्यक्तियों का चित्र भी । सामाजिक वैषम्य व शोषण-उत्पीड़न की ओर कवि का ध्यान मुड़ता जाता है । इस सामाजिक वैषम्य के कारण असंख्य महान प्रतिभाएं - अविकसित दशा में विनष्ट होती हैं । कवि के ही साथी मन्नू, रम्मा, रचना आदि अर्थ-वैषम्य के कारण गायन, शिल्प तथा अध्यापन की अपनी नैसर्गिक प्रतिभा को पनपा न सके । उनके सपने सपने ही रह गये । फिर कवि भविष्य के सपनों में मग्न हो जाता है । वह उस भविष्य का सुनहला सपना देखता है । जिसमें मानव सुख समृद्धि के साथ मुक्त जीवन बिताता है । अपने अनुभव से तथा मानवता के व्यापक पुनर्निरीक्षण से कवि को यह चेतना प्राप्त हुई है कि मानव-श्रम रूपी अजगर अधिक समय तक यों निष्क्रिय नहीं बना रहेगा, वह अपनी कुण्डली खोलकर अपने दृढ़ श्वास से शोषण और शासन की पूंजीवादी सत्ता को मिटाने का श्रम करेगा । उस मुक्त वातावरण में हर व्यक्ति को अपना पथ प्रशस्त करने का अवसर प्राप्त होगा । घर-घर में प्रतिभा के कमल खिलेंगे तथा पृथ्वी का समस्त वैभव मानवमात्र के लिए उपभोग्य बन जायगा ।

प्रस्तुत काव्य की कहानी कवि के विगत जीवन के संस्मरणों, अभावों और भविष्य जीवन के स्वप्नों द्वारा गूंथी गयी है । कहानी का तारतम्य भी घटना क्रम से नहीं बल्कि भाव एवं विचारों के सहज सम्बन्धों से बना है । पूंजीवादी समाज के वैषम्य तथा अन्तर्विरोधों का सच्चा चित्र प्रस्तुत काव्य में उपस्थित है ।

युद्ध (मैथिलीशरण गुप्त)

'युद्ध' गुप्त जी के प्रबन्धकाव्य 'जयभारत' का एक अंश है । उस अंश को कवि ने खण्ड-काव्य का स्वतंत्र रूप दे दिया है । स्वतंत्र रूप में प्रस्तुत खण्डकाव्य 'युद्ध' का प्रकाशन सन्

१९५२ में हुआ । महाभारत के अंतिम युद्ध का वर्णन ही काव्य का विषय है । युद्ध सम्बन्धी विचारों के वर्णन से काव्य का श्रीगणेश होता है । पांडव-कौरवों के बीच का युद्ध, कृष्ण के द्वारा युद्ध की मर्यादा का उल्लंघन, अर्जुन को प्रेरणा देकर उनके द्वारा भीष्म के शर-शैया-शायी हो जाना, अभिमन्यु वध, द्रोण वध, कर्ण-वध, दुर्योधन की हत्या आदि प्रसंगों को लेकर प्रस्तुत काव्य में युद्ध सम्बन्धी विचार उठे हैं । युद्ध सम्बन्धी विचारों में सर्वत्र प्रबन्धत्व का पालन हुआ है । एक ही विचार के श्रृंखलाबद्ध वर्णन से युक्त यह लघु काव्य खण्डकाव्य की कोटि में आने वाला है ।

कैकेयी (हेमचन्द्र शर्मा)

राम कथा पर आधारित इस खण्डकाव्य का प्रकाशन सन् १९५२ ई० में हुआ । कैकेयी को केन्द्र बनाकर विरचित इस काव्य में रामकथा के कतिपय प्रसंगों का आधुनिक परिवेश के अनुकूल मौलिक वर्णन हुआ है । काव्यारंभ में कैकेयी की वर याचना की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है । कैकेयी के वर मांगने पर राजा दशरथ की जो मानसिक दयनीय दशा होती है, तथा जनता में भी जो क्रांति उठती है उसका वर्णन काव्य में हुआ है । इसके उपरान्त राम, सीता तथा लक्ष्मण का वन-गमन-वर्णन है । राम वन गमन के उपरान्त दशरथ की मृत्यु हो जाती है । भरत अयोध्या आ जाता है तथा अपनी माता की करतूत पर उसकी भर्त्सना करता है । पश्चाताप विभोर होकर रानी वन को प्रस्थान करती है तथा श्रीराम से क्षमा मांगकर उनसे लौट चलने की प्रार्थना करती है ।

वस्तुतः कैकेयी के पश्चाताप की कथा ही प्रस्तुत काव्य में वर्णित है । कैकेयी के चरित्र का मनोवैज्ञानिक चित्रण काव्य में उपस्थित है । सात सर्गों में काव्य कथा का विकास हुआ है । अपनी विस्तृति के बावजूद भी काव्यनायिका के जीवन तथा चरित्र के एक पक्ष का उद्घाटन करने वाला यह काव्य विषय व रूप की दृष्टि से खण्डकाव्य है ।

कामिनी (नरेन्द्र शर्मा)

सन् १९५३ ई० में यह काव्य प्रकाशित हुआ । एक काल्पनिक प्रेम कथा ही इसमें वर्णित है । कामिनी तथा अतिथि के मिलन, वियोग तथा उनके पुनर्मिलन का वर्णन काव्य में हुआ है । कामिनी की छुटिया में एक अतिथि आ जाता है तथा दोनों मिल जाते हैं । कामिनी तथा उसका प्रिय (कामिनी के पति का उल्लेख काव्य में सर्वत्र अतिथि नाम से हुआ है । कामिनी की छुटिया में अतिथि की भाँति वह चंद दिन के लिए ही ठहरता है ।) वासना पूर्ति को ही जीवन का सब कुछ मानकर यौवन की मधु सविरा पीकर जी रहे थे । नियति के अभिशाप से उनका वियोग हो जाता है । दोनों विरह की ज्वाला में जलकर जीते हैं । विरह-ज्वाला में जलकर उनके मन का कलुष भस्म हो जाता है । इस बीच कामिनी का एक पुत्र उत्पन्न हो जाता है तथा पुत्र जन्म पति को उसकी ओर खींच लाता है । उनके सुखद पुनः मिलन पर काव्य की समाप्ति हो जाती है ।

नारी और पुरुष का निभृत मिलन सृष्टि के विकास का कारण है । यही सृष्टि मानव जीवन को गति प्रदान करती है । इस काव्य में भी पुत्रोत्पत्ति ही मां-बाप के सम्बन्ध को पुनः स्थापित करने वाली कड़ी रहती है । 'कामिनी' के द्वारा कवि ने उसका भी संकेत दिया है कि केवल वासना और उससे प्राप्त ऐन्द्रिक सुख से प्रेम पूर्ण नहीं होता । प्रेयसी या कामिनी से अधिक मां का ही महत्व है । प्रस्तुत लघु प्रबन्ध काव्य वस्तुतः एक प्रेम कथा है जिसे कवि ने 'कथा गीत' बताया है ।[१] सारी कहानी ३७ सरल गीतों में कही गयी है और उसमें प्रबन्धत्व का विशेष गुण विद्यमान है । यों प्रेमकथा युक्त यह लघुकाव्य, गीत-शैली का खण्डकाव्य है ।

शकुन्तला (मैथिलीशरण गुप्त)

सन् १९५४ ई० में गुप्त जी का खण्डकाव्य 'शकुन्तला' प्रकाशित हुआ । कालिदास प्रणीत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' प्रस्तुत काव्य का उपजीव्य रहा है । इस कथा का मूलस्रोत

१- कामिनी : नरेन्द्र शर्मा - भूमिका ।

महाभारत है ।[1] दुष्यंत-शकुन्तला के प्रेम, गांधर्व विवाह, महर्षि दुर्वासा का शाप, पति-पत्नी का विरह एवं आखिरी मुलाकात का सुचारु रूप से प्रस्तुत काव्य में वर्णन हुआ है । यह कविवर गुप्त जी का नायिका प्रधान खण्डकाव्य है जिसमें नारी की महिमा का गायन किया है । आपके नारी प्रधान काव्यों में पुरुष की कठोरता सर्वदा क्षमा मांगती है तथा प्रस्तुत काव्य के अंतिम भाग में भी शकुन्तला के पैरों को छूकर दुष्यंत क्षमा-प्रार्थना करते हैं । काव्य की कथावस्तु का विभाजन, 'उपक्रम', 'जन्म और बाल्यकाल' जैसे प्रसंग शीर्षकों के द्वारा हुआ है । काव्य में विभिन्न छंदों का प्रयोग हुआ है जिसमें प्रत्येक प्रसंग के उपरान्त छंद-परिवर्तन होता है । प्रस्तुत काव्य में खड़ीबोली की सरलता तथा लालित्य वर्णनीय है ।

शल्य वध (उग्रनारायण मिश्र)

शल्य वध खण्डकाव्य सन् १९५४ में प्रकाशित हुआ । इसकी कथावस्तु का आधार महाभारत है । इसमें शल्य के वध का वर्णन हुआ है । इस काव्य का नायक शल्य है जिसकी वीरता का हृदयग्राही वर्णन हुआ है । क्षात्र धर्म के पालन पर जोर देने वाला है यह काव्य। रण के लिए दुर्योधन शल्य को आमंत्रित करते हैं । अपने मन की भावनाओं के प्रतिकूल वह युद्ध की चुनौती को स्वीकार करते हैं । अपने क्षात्र धर्म के परिपालन की महत्ता को वे कलंकित होने न देते । काव्य में वीर रस की प्रधानता है ।

पांचाली (रांगेय राघव)

महाभारतीय आख्यान[2] के आधार पर विरचित यह खण्डकाव्य सन् १९५५ ई० में प्रकाशित हुआ । अज्ञातवास के पूर्व जब पाण्डव द्रौपदी के साथ काम्यक वन में निवास करते हैं तब एक दिन सिन्धुराज जयद्रथ उधर आता है तथा द्रौपदी से अपना प्रणय प्रकट करता है । द्रौपदी उसे फटकारती है । उसकी प्रताड़ना से क्रुद्ध जयद्रथ द्रौपदी का हरण

१- महाभारत : आदिपर्व - अध्याय ६८ से ७४ तक.

२- महाभारत : वनपर्व अध्याय २७१.

करते हैं । पाण्डव उनके पीछे जाते हैं तथा जयद्रथ का नारी हरण करने पर अपमान करते हैं । पांडव उसे मारने को उद्यत हो जाते हैं पर दु:शला के कहने पर उसे छोड़ देते हैं । तत्कालीन दास प्रथा का चित्रण काव्य में हुआ है । नवीन विचारों का भी समावेश इसमें हुआ है ।

<u>तप्तगृह</u> (केदारनाथ मिश्र 'प्रभात')

कविवर प्रभात जी का लिखा 'तप्तगृह' काव्य सन् १९५४ ई० में प्रकाशित हुआ । राजा बिंबिसार के जीवन के संघर्षपूर्ण अंतिम दिनों का मार्मिक चित्रण ही प्रस्तुत काव्य का विषय है । मगध का सम्राट बिंबिसार भी बुद्ध का सच्चा अनुयायी एवं भक्त था । उनकी पत्नी कोशला भी गौतम बुद्ध के सिद्धांतों से प्रभावित थी । गौतम बुद्ध की चिंताधारा के विस्तृत प्रसार देखकर आचार्य देवदत्त का ही मन क्षुब्ध रहता था । उसके प्रभाव को मिटाने के प्रयत्न में मग्न था वह । उसने राजा बिंबिसार के पुत्र कौणिक (अजातशत्रु) को राजा के विरुद्ध करने का निश्चय किया । इस उद्देश्य के साथ वह राजकुमार कौणिक के पास गया तथा कुमार के मन में राजगद्दी के प्रति मोह जगा दिया । अपने खड्ग के द्वारा सम्राट् की हत्या करके सत्ता प्राप्त करने का उसने आदेश दिया । --

"..... किन्तु नहीं राजमुकुट
मिलता है दान में
वह तो पराक्रम का
पौरुष का बल का
रक्त भरा मूल्य है ।"

राज्य के लोभ में कुमार ने अपने पिता बिंबिसार को तप्तगृह में बन्दी बनाया । किन्तु बिंबिसार के हृदय ने अपने बेटे को पापी नहीं ठहराया । अपने बेटे के क्रिया कलापों को नवीन क्रांति का समारंभ मानते हुए आपने अपने बलिदान को सार्थक मान लिया । अपने

पिता की मृत्यु का तथा अपनी विधवा माता के दुःख का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। किन्तु उसका एक पुत्र उत्पन्न हुआ तो पितृहृदय की सच्ची पहचान उसे हुई। अंत में उसने पश्चाताप की भूमिका पर अपनी माता से क्षमा याचना की।

राजा बिंबिसार तथा उनके पुत्र कोणिक से सम्बन्धित ऐतिहासिक कथावृत्त ही प्रस्तुत काव्य में वर्णित है। कथानक तो पुराना है किन्तु कवि ने नवीन एवं मौलिक उद्भावनाओं द्वारा काव्य को अनूठी ताजगी प्रदान की है। कथा के संगठन में कवि ने कल्पना के साथ-साथ मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण का सहारा लिया है। यही कारण है कि काव्य में मानसिक संघर्षों का अच्छा वर्णन हुआ है। 'तप्तगृह' शीर्षक सार्थक है। इतिहास में भी तप्तगृह का उल्लेख है। यह एक ऐसा कारागार था जो राजगृह का यातनागृह था जो अपनी उष्णता के कारण अपने नाम को सार्थक करता था। इतिहास के अनुसार यह कारागार कुक्कुट के आसपास था और उसी में अजातशत्रु ने बिंबिसार को कैद रखा था।

प्रयाण (गिरिजाशंकर शुक्ल 'गिरीश')

'गिरीश' जी का खण्डकाव्य 'प्रयाण' सन् १९५५ में प्रकाश में आया। द्वारकाधीश श्रीकृष्ण के पास विप्र सुदामा के प्रयाण की कथा ही प्रस्तुत काव्य का विषय है। कृष्ण एवं सुदामा की आदर्श मैत्री का सुन्दर वर्णन इस काव्य में हुआ है। सांदीपनी महर्षि के आश्रम में कृष्ण व सुदामा एक साथ विद्याध्ययन करते थे। अध्ययन के बाद दोनों बिछुड़े। कृष्ण द्वारकाधीश बना तथा बेचारा सुदामा दरिद्र ही रह गया। राजा बनने पर भी कृष्ण अपने बचपन के सखा सुदामा को नहीं भूले। जबकि अपनी पत्नी सुशीला के बारंबार आग्रह करने पर सुदामा कृष्ण से मिलने के लिए द्वारका की ओर प्रयाण करते हैं, सुदामा धन-सम्पत्ति की प्राप्ति के मोह से प्रेरित होकर कृष्ण की ओर प्रयाण नहीं करते, निष्काम भाव से ही वे अपने बालसखा के पास गमन करते हैं। कृष्ण अपनी आदर्श मैत्री को निभाते हैं तथा अपने सखा का दारिद्र्य दूर कर देते हैं।

कृष्ण-सुदामा प्रसंग कृष्ण के उज्ज्वल चरित्र का एक मार्मिक पक्ष है जिसका उद्घाटन इस खण्डकाव्य में हुआ है । भाव एवं रूप के मणिकांचन संयोग से युक्त यह एक सफल खण्डकाव्य है । कई मौलिक उद्भावनाओं के ज़रिए गिरीश जी ने प्रस्तुत कथा को परिष्कृत किया है । `प्रयाण` का सुदामा आर्थिक लोभ वश कृष्ण के पास नहीं जाता बल्कि अपने मित्र से मिलने की इच्छा, श्रीकृष्ण के हिस्से के चने पहले खाने के अपराध से मुक्त होने की इच्छा तथा कृष्ण के ईश्वरत्व के दर्शनों की इच्छाओं से प्रेरित होकर ही सुदामा द्वारका की ओर प्रस्थान करता है । वहाँ पर कृष्ण उससे तीन कण तंदुल लेकर उसे तीन लोक-शुद्धबुद्धि लोक, सत्कर्म लोक एवं फल लोक - दे देते हैं । सुदामा को यह दान देने के लिए स्वयं कृष्ण अपने विमान पर आरूढ़ होते हैं जिसमें रुक्मिणी, सत्यभामा, सुदामा आदि सब सुदामा की कुटि की ओर प्रयाण करती हैं ।

सिंहद्वार (जीवन शुक्ल)

जीवन शुक्ल जी का खण्डकाव्य `सिंहद्वार` सन् १९५६ में प्रकाश में आया । प्रस्तुत काव्य में महमूद गज़नी के साथ भारतीय वीर बापा रावल का जो युद्ध हुआ, उसका मार्मिक चित्रण हुआ है । रत्नगर्भा भारत को लूटने की उसकी अदम्य अभिलाषा थी । सोमनाथ का विख्यात मन्दिर उसके आकर्षण का केन्द्र था । सोमनाथ के मन्दिर को लूट कर अमूल्य संपत्ति हड़प लेने तथा अपने को मूर्ति भंजक कहलाने की इच्छा से प्रेरित वह मन्दिर की ओर अभियान करता है । देशवासियों के लिए यह अपने धर्म व मर्यादा का प्रश्न था । बापा रावल जो एक गढ़ का स्वतंत्र सरदार था, उसने डटकर सोमनाथ की रक्षा करने का निश्चय किया । अस्सी वर्ष के उस वीर शेर ने अपने वीर अनुयायियों को उस ओर उन्मुख किया । ग़ज़नी की बड़ी सेना के सम्मुख बापा रावल की सेना पराजित हुई तथा अपनी मर्यादा की रक्षा करते करते वह रणभूमि में विसर्जित हो गया ।

विदुलोपाख्यान (भगवतीशरण चतुर्वेदी)

सन् १९५६ में 'विदुलोपाख्यान' का प्रकाशन हुआ । इसकी रचना महाभारत के आख्यान के आधार पर हुई है । क्षत्राणी माता विदुला का अपने पुत्र संजय को संदेश ही काव्य की कथावस्तु है । काव्य का प्रारंभ संजय की पराजय से होता है । पराजित बेटा युद्ध से पराङ्मुख हो, युद्धक्षेत्र से लौट आता है । पुत्र की इस कर्तव्य-विमुखता से माता अत्यंत खिन्न हो जाती है तथा अपने पुत्र संजय को कर्मानुष्ठान की प्रेरणा दे देती है । वीर क्षत्राणी माता विदुला वीरता भरे शब्दों से अपने पुत्र को प्रबुद्ध करती है । इस संसार की नश्वरता तथा क्षात्र धर्म के परिपालन की आवश्यकता पर यह वीर माता प्रकाश डालती है । उसका यही उपदेश है कि युद्ध से पराजित व्यक्ति के अपमानित जीवन से रणभूमि में वीर गति प्राप्त करना ही श्रेयस्कर है ।

क्षात्रधर्म सम्बन्धी ये ही विचार काव्य में मुखरित हुए हैं । प्रस्तुत काव्य में कथावस्तु का संयोजन तथा चरित्रांकन खण्डकाव्य के अनुकूल हुआ है । वीर रस ही प्रस्तुत काव्य का अंगी रस है ।

सतीसावित्री (गोपाल शास्त्रिय)

'सती सावित्री' काव्य का प्रथम संस्करण सन् १९५७ ई० में निकला । 'सती-सावित्री' खण्डकाव्य का आधार 'महाभारत' है तथा उसी कथा के अनुरूप ही प्रस्तुत काव्य में कथा चलती है । इसमें सावित्री के सतीत्व का उज्ज्वल वर्णन प्रस्तुत हुआ है । यौवन की मादक वेला में सावित्री की भेंट सत्यवान से होती है । महर्षि नारद से यह जानकर भी कि और एक सात के पूर्ण होते ही सत्यवान की मृत्यु होगी — सावित्री उसे वर रूप में चुनती है तथा परिणय सम्पन्न हो जाता है । वे सुखपूर्ण दांपत्य जीवन व्यतीत कर रहे थे कि प्राण सरीखा एक सात बीत गया । सत्यवान को एक सांप ने डस लिया तथा उनकी मृत्यु हुई सावित्री के सतीत्व के प्रभाव से सत्यवान के प्राणों को लेने के लिए स्वयं यमदूत

जाये तथा अपने प्रियतम के प्राणों का पत्नी ने अनुगमन किया । यम ने कई बार उसे लौट जाने की आज्ञा दी, पर वह मानने वाली न हुई । सावित्री के सतीत्व तथा उसके तप के प्रभाव में आकर स्वयं यमदेव धर्मसंकट में पड़ गये तथा पत्नी को पति का जीवन पुनः प्राप्त हुआ ।

प्रख्यात पौराणिक कथा का आख्यान ही प्रस्तुत खण्डकाव्य में हुआ है । सावित्री के उज्ज्वल चरित्र का सजीव वर्णन काव्य में उपस्थित है ।

<u>तांत्या टोपे</u> (लक्ष्मीनारायण `कुशवाह`)

तांत्या टोपे काव्य सन् १९५७ ई० में प्रकाशित हुआ । भारतीय इतिहास के वीर पुरुष तांत्या टोपे की देश भक्ति व वीरता का समुज्ज्वल वर्णन काव्य में हुआ है । तांत्या टोपे सन् १८५७ के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख सेनानी थे । अंग्रेजों के साथ लड़कर उसने अन्त में रणक्षेत्र में ही मरण का वरण किया । प्रस्तुत काव्य में तांत्या टोपे के वीरतापूर्ण कार्यों का क्रमबद्ध वर्णन मिलता है । आधुनिक भारतीय इतिहास ही प्रस्तुत खण्डकाव्य का आधार है । कवि ने अपने काव्य में केवल प्रामाणिक घटनाओं का ही उल्लेख किया है । ३१ आहुतियों (सर्गों) में प्रस्तुत काव्य में कथा का क्रमिक विकास हुआ है । वीर रस की सजीव व्यंजना से काव्य ओजस्वी बना है । देश की स्वतंत्रता के लिए सामाजिक संगठन तथा आत्मबलिदान की आवश्यकता पर भी कवि ने प्रस्तुत खण्डकाव्य में ज़ोर डाला है ।

<u>गृहलक्ष्मी</u> (गिरिजादत्त शुक्ल `गिरीश`)

श्री गिरीश का खण्डकाव्य `गृहलक्ष्मी` सन् १९५७ ई० में प्रकाशित हुआ । ससुराल में बहू बनकर जाने वाली नारियों की दीनता का वर्णन ही प्रस्तुत काव्य का विषय है । एक ग्रामीण परिवार की कहानी काव्य में चित्रित है । बहू बनकर सास के पास जाने वाली नारी का मनोवैज्ञानिक चित्र काव्य में उपस्थित है । `गृहलक्ष्मी` की नायिका

विमला अपनी चारित्रिक महत्ता के कारण अपने कर्कश सास के हृदय को भी आकर्षित कर, सास की दुलारी बन जाती है । ऐसी ही नारी गृह की लक्ष्मी है । विमला की सास बड़ी ही क्रूर एवं कर्कश थी । लेकिन विमला सभी प्रकार के कष्ट उठाती हुई भी बहू की मर्यादा का पालन करती है । विमला का मनोवैज्ञानिक चरित्र काव्य में चित्रित हुआ है । भारतीय घरों के सास-बहू सम्बन्ध को सुदृढ़ करने का उपचार भी कवि देते हैं । कवि की राय में बहुओं का विमला के रूप में परिणत होना तथा सास का गायत्री देवी के रूप में परिणत होना ही इसका एकमात्र उपचार है ।

गृहलक्ष्मी के रूप में विमला का चित्र खूब निखरा हुआ है । प्रस्तुत काल्पनिक कथावस्तु सात सर्गों में वर्णित है । विभिन्न छंदों -- वीर ताटंक, वीर छंद, ललितपद आदि का तथा विभिन्न अलंकार का प्रयोग काव्य में हुआ है । काव्य की भाषा शैली भी सरल, पांजल एवं प्रवाहशाली है ।

अनासक्ति (राजेन्द्र आर्य)

राजेन्द्र आर्य का खण्डकाव्य `अनासक्ति` सन् १९५७ ई० में प्रकाशित हुआ । राजनीतिक धरातल पर अनासक्ति की महत्ता का गायन इस काव्य का विषय है । एक अनासक्त योगी पुरुष के राष्ट्रहित कार्यों का सजीव वर्णन प्रस्तुत काव्य में हुआ है । मौलिक तत्वों में आसक्ति-अनासक्ति के विषय को लेकर विविध भावों के आलोड़न-विलोड़न में रहने वाला मानव अन्त में लौकिक ममता छोड़ कर `स्वाभाविक सात्विक सुख` की ओर प्रयाण करता है । जीवन के प्रस्तुत पथ की गामिनी होने के लिए मानव ने अपनी प्रणयिनी को भी आह्वान दिया । लेकिन वह रमणी अपने घर में ही प्रलाप करती रही । मानव सेवा करने के लिए वह महान् मानव निकल पड़ा । उसने अनासक्ति तथा सेवा का पाठ पढ़ाया प्रजा की भलाई के लिए प्रजातंत्रीय शासन की योजना हुई, लेकिन अधिकार प्राप्ति की उसे बिल्कुल चाह नहीं रही । प्राप्ति के समय उसने शांति की सीख सिखायी । पंचशील प्रचारार्थ वह देश-विदेश गया । विश्वशांति की रक्षा के लिए `राष्ट्रसंघ` के निर्माण की बात अपने

उठायी । देश की भलाई के लिए आपने और भी कई कार्य किये । घूमते-फिरते अन्त में वह अपनी प्रिया के पास आ गये । वह मृत्यु के मुंह में थी, पर प्रिय मिलन के अमर विश्वास में वह जीवित थी । प्रिय दर्शन मिले तथा उनके मुंह से अनासक्ति का अमर सन्देश सुना, तो नारी ने उनके चरणयुगलों पर अपना माथा नवाया ।

भारत की राजनीतिक पृष्ठभूमि में रचित इस खण्डकाव्य की कथा काल्पनिक है । लेकिन वर्णन इतना यथार्थ हुआ है कि किसी देशप्रेमी व्यक्ति की सेवा की याद आती है ।

चंदेरी का जौहर (श्री आनन्द मिश्र)

सन् १९५७ में प्रस्तुत खण्डकाव्य का प्रकाशन हुआ । यह एक ऐतिहासिक खण्डकाव्य है जिसमें राजा मेदिनी राय के जीवन के एक महत्वपूर्ण प्रसंग का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत हुआ है । राणा सांगा को पराजित करने के उपरांत मुगल सम्राट् बाबर ने सन् १५२८ ई० में चंदेरी पर घेरा डाला । चन्देरी का राजा मेदिनीराय बड़े ही वीर तथा पराक्रमी थे । इनकी वीरता को ध्यान में रखकर बाबर ने उनके पास एक सन्धि पत्र भेजा । उसमें यह सूचित किया गया था कि वह चन्देरी छोड़ दे तथा बदले में अहमदाबाद को प्राप्त करे । सन्धि पत्र पाकर राजा तथा वीर क्षत्राणी मणिमाला क्षुब्ध एवं क्रुद्ध हो गये । उन्होंने बाबर के सन्धि प्रस्ताव को ठुकरा दिया । प्रस्ताव के अस्वीकृत होने पर बाबर की विशाल वाहिनी ने चन्देरी पर चढ़ाई कर दी । एक राजपूत -- हिम्मतसिंह ने उसका पक्ष लिया । घमासान लड़ाई शुरू हुई । दो दिन के युद्ध के पश्चात् राजा वीरगति को प्राप्त हुए । रानियों ने अपने बच्चों की हत्या की तथा स्वयं जौहर की ज्वाला में कूदकर खाक हुईं ।

प्रस्तुत ऐतिहासिक घटना पर आधारित यह खण्डकाव्य काव्य रूप की दृष्टि से भी नितांत सफल बना है । काव्य में वीर एवं करुणरस की अभिव्यक्ति हुई है ।

अग्निपथ (अनूपशर्मा)

रामायण कथा की पृष्ठभूमि पर विरचित इस खण्डकाव्य का प्रकाशन सन् १९५८ ई० में हुआ । रावण वध तथा उनकी द्वितीय पत्नी के अग्निप्रवेश की कथा ही प्रस्तुत काव्य में वर्णित है । अपने पुत्र मेघनाद के वध होने पर रावण दुःख तप्त हो जाता है । उनकी दूसरी पत्नी सिंहिका रावण को पुनः युद्ध के लिए प्रेरित करती है । अपनी पत्नी की प्रेरणा पर रावण युद्ध के लिए तैयार हो जाता है । राम और रावण के बीच का भीषण संग्राम हो जाता है तथा रावण भी मृत्यु के घाट उतारा जाता है । अपने वीर पति की मृत्यु से सिंहिका अत्यन्त खिन्न हो जाती है । उसकी वैधव्य-वेदना पर लंकावासिनी सीता भी दुःखी हो जाती है । अशोक वाटिका में बैठी बैठी सीता देवी भी सिंहिनी के वैधव्य पर रो उठती है । आखिर दुःख तप्त वीर नारी सिंहिनी अपने पति की चिता पर कूद कर सती हो जाती है । सिंहिका के अग्निपथ प्रवेश की कथा ही प्रस्तुत खण्डकाव्य का विषय है ।

लंका के राजा रावण के जीवन के अंतिम चौबीस घंटों का भावपूर्ण चित्र ही काव्य में उपस्थित है । एक मर्मस्पर्शी कथा का मर्मस्पर्शी आविष्करण काव्य में हुआ है । वीर एवं करुण रस की सुन्दर व्यंजना काव्य में हुई है । वीर रमणी सिंहिका का मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण काव्य में हुआ है । उसके अग्नि-प्रवेश का प्रसंग प्रस्तुत खण्डकाव्य का मार्मिक प्रसंग है ।

दशानन (श्री कैलाश त्रिपाठी 'विद्रोही')

सन् १९५८ ई० में 'दशानन' खण्डकाव्य प्रकाशित हुआ । कथा का आधार रामायण की कथा है, किन्तु काव्य के रावण सम्बन्धी परम्पराविरुद्ध विचारों ने इसे एक विद्रोही काव्य ठहराया है । राम के चरित्र के दुर्बल पक्षों तथा रावण के वीरोचित कार्यों का संकेत काव्य में हुआ है । राम तथा उनके पक्ष वालों द्वारा किये गये अनेक कार्यों को रावण घृणित सिद्ध करते हैं । अपनी बहन शूर्पणखा का अपमान, बालिवध, लंकादहन,

विभीषण एवं सुग्रीव आदि को अपने पक्ष में करना, लंका में अयोध्या का शासन आदि ऐसे बातें श्रीराम के महान् व्यक्तित्व के विरुद्ध इस काव्य में प्रस्तुत हुई है । प्रस्तुत खण्ड-काव्य में कवि ने परम्परागत कथावस्तु पर कई परिवर्तन उपस्थित किये हैं ।

वीर लाल पद्मधर (सन्मथ कुमारिया)

`वीरलाल पद्मधर` शीर्षक खण्डकाव्य सन् १९५८ ई० में प्रकाशित हुआ । यह काव्य सन् १९४२ के अमर शहीद प्रयाग विश्वविद्यालय के छात्र पद्मधर की स्मृति में विरचित है । एक मार्मिक तत्कालीन घटना पर आधारित यह रचना १९४२ की अगस्त क्रान्ति को आलोकित करने में समर्थ हुई है । भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में विश्वविद्यालयी विद्यार्थियों का योगदान भी कम महत्व का नहीं है । अगस्त सन् १९४२ को अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध प्रयाग विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का एक जुलूस निकला । कलीफुल श्री रघुवीर सिंह उसके नेता थे । अंग्रेजों के विरुद्ध नारे बुलन्द हुए तो पुलिस सिपाही लाठी लेकर आये । जुलूस बिखर गया तो सिपाहियों ने नेता पर गोली चलाने को कहा । उस समय `मत चलाना गोली, पहिले मुझे मारो । चलाओ गोली` -- कहते पद्मधर आगे की ओर बढ़ा । नेता की रक्षा करते वह शहीद हुआ । प्रस्तुत काव्य में उस जुलूस के नेता ही अपने मुख से पद्मधर द्वारा अपनी रक्षा की कहानी कहता है -- इस प्रकार के वर्णन से काव्य और सजीव बना है ।

छन्द बद्ध भावपूर्ण शैली में यह सर्गरहित खण्डकाव्य बना है ।

कच-देवयानी (श्री रामचन्द्र)

सन् १९५८ में प्रकाशित इस खण्डकाव्य का आधार महाभारत के आदिपर्व का उपाख्यान है । इसमें कच एवं देवयानी के मानसिक द्वन्द्व का सफल चित्रण हुआ है । बृहस्पति के पुत्र कच शुक्राचार्य के पास `संजीवनी` विद्या सीखने आते हैं । गुरु की बेटी देवयानी कच को प्यार करती है । पहले तो कच की ओर से कोई विरोध नहीं होता लेकिन जबकि कच विद्या सीखकर लौट जाते हैं तब देवयानी की प्रेम-प्रार्थना को ठुकराकर चले जाते हैं । नर का यह

उपेक्षा भाव - वह भी प्रणय के पक्ष में - नारी कैसे सहन करे। देवयानी का मन प्रक्षुब्ध हो जाता है तथा वह कच को भला-बुरा कहती है। कच के मन में भी संघर्ष उठ रहा है कि वह गुरु कन्या को कैसे स्वीकार करे। यह आदर्श उसके सम्मुख पेश करके कवि नारी के सामाजिक विद्रोह का समाधान करते हैं। यही नहीं उनकी राय में आदर्श की स्थापना के लिए छल का मार्ग भी स्वीकार्य हो जाता है।

प्रस्तुत काव्य का समस्त कथानक महाभारतीय उपाख्यान को लेकर चलता है। पात्रों के मानसिक द्वन्द्वों का चित्रण कवि का अपना है।

<u>अमृतपुत्र</u> (सियारामशरण गुप्त)

अमृतपुत्र अथवा 'प्रभु ईसा' नामक खण्डकाव्य सन् १९५९ ई० में प्रकाश में आया। बाइबिल की कथा को उपजीव्य बनाकर विरचित यह काव्य शायद ईसा मसीह के सम्बन्ध में निर्मित पहला हिन्दी काव्य है। इसमें महात्मा ईसा के जीवन के दो महत्वपूर्ण प्रसंगों का मार्मिक चित्रण है। उक्त दोनों प्रसंगों का वर्णन उनके समय के ही दो व्यक्तियों द्वारा उपस्थित हुआ है। यों इस काव्य के दो आख्यान हैं -- (१) सामरी (२) क्रूसधर।

'सामरी' में समारा की निम्न जाति की एक नारी सामरी के हाथों महात्मा ईसा के जल पीने का तथा उस नारी के मन में उठने वाली प्रतिक्रियाओं का मार्मिक वर्णन हुआ है। यह तत्कालीन ऊँच-नीच की सामाजिक परिस्थिति को स्पष्ट प्रकट करने वाला है।

'क्रूसधर' में महात्मा ईसा के क्रूसारोपण की घटना का वर्णन हुआ है। इस मर्मस्पर्शी घटना के वृद्धा नागरी सायमन के मुँह से ही प्रस्तुत कथानक का उल्लेख मिलता है। काव्य के दोनों आख्यान दो स्वतंत्र आख्यान हैं जो महात्मा ईसा के व्यक्तित्व के दो महान् पक्षों को व्यक्त करने वाले हैं। इस प्रकार ये दोनों आख्यान दो लघु खण्डकाव्य कहे जा सकते हैं, जो ईसा के जीवन के दो प्रसंगों को लेकर निर्मित हुए हैं।

कनुप्रिया (डा० धर्मवीर भारती)

कृष्ण कथा की पृष्ठभूमि में विरचित `कनुप्रिया` काव्य का प्रकाशन सन् १९५९ में हुआ । परिवेशानुकूल समस्याओं वर्णित कान्ह एवं राधिका के प्रणयनिवेदन की कथा ही काव्य का विषय है । इसमें कृष्ण के जीवन के कुछ अत्यन्त मार्मिक प्रसंगों का विवरण स्वयं कान्ह की प्रिया राधिका देती है । राधा-कृष्ण के प्रणय सम्बन्धी इस काव्य की यही विशेषता है कि यह सभी युगों के सभी स्त्री-पुरुषों की प्रणय कथा सी महसूस होती है । पौराणिक कथावस्तु आधारित यह कृति सचमुच आधुनिक ही प्रतीत होती है । युद्ध एवं प्रेमपूर्ण जीवन के द्वन्द्व द्वारा कवि ने राधिका का नवीन चित्र उपस्थित किया है । घटनाओं से अधिक कवि के विचार ही काव्य में प्रमुख स्थान पाते हैं । काव्य की कथावस्तु एक खण्ड-काव्य के लिए उपयुक्त ही है । कथावस्तु पूर्वराग, मंजरी-परिणय, सृष्टि संकल्प, इतिहास, समापन जैसे पाँच खण्डों में विभक्त है । शृंगार ही काव्य का अंगी रस है । गीतितत्व तथा नाटकीय तत्व के रहते हुए भी विषय की दृष्टि से `कनुप्रिया` नाट्यशैली के खण्डकाव्य के रूप को प्राप्त करता है ।

दानवीर कर्ण (गुरु पद्म सेमवाल)

`महाभारत` पर आधारित प्रस्तुत काव्य का प्रथम संस्करण निकला सन् १९५९ ई० में । कर्ण के कवच कुण्डल दान की कथा ही काव्य में वर्णित है । महाभारत युद्ध में अजेय पौरुष वाले कर्ण के सम्मुख महावीर अर्जुन को विजय प्राप्त करने की कोई आशा नहीं रही । कर्ण के कवच-कुण्डल धारण करते समय कोई भी महारथी उन्हें पराजित नहीं कर सकता । यह तथ्य जानकर अर्जुन का पिता देवेन्द्र वेश बदलकर कर्ण के पास जाता है तथा उससे दानस्वरूप अपने कर्ण कुण्डलों को मांगता है । कर्ण को इस छल का पता अपने पिता सूर्यदेव से प्राप्त था । लेकिन वचनबद्ध एवं महादानी कर्ण अपने खतरे से परिचित होते हुए भी अपने कर्ण कुण्डलों का दान कर डालते हैं ।

कर्ण की दानशीलता तथा उसके महान् चरित्र के उज्ज्वल वर्णन से काव्य ओत-प्रोत है । कर्ण के दानशील की कथा को घेर कर कर्ण सम्बन्धी अन्य प्रसंग भी काव्य में वर्णित हैं । कुन्ती की निर्दयता, पाण्डवों का घमण्ड, दुर्योधन का लोभ आदि का काव्य में वर्णन हुआ है । कर्ण के महान् चरित्र का उद्घाटन करने वाले इस काव्य में वीर रस की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है । इस काव्य के बीच-बीच में कवि ने काव्यांशों को गद्य में जोड़ने का प्रयत्न किया है । यह तो प्रबन्ध निर्वाह की दुर्बलता ही है । इस दुर्बलता के बावजूद भी `दानवीर कर्ण` एक सफल खण्डकाव्य ठहरता है । इस प्रसंग पर मलयालम में एक सुन्दर खण्डकाव्य विरचित हुआ है --`कर्णभूषणम्` ।[१]

प्रेमविजय (सेठ गोविन्ददास)

सेठ गोविन्ददास का यह काव्य सन् १९५६ में प्रकाशित हुआ । श्रीकृष्ण के द्वारा बाणासुर के हृदयपरिवर्तन की कथा ही प्रस्तुत काव्य में वर्णित है । बाणासुर की तपस्या, शिवजी का वरदान, पुत्री उषा का जन्म, अनिरुद्ध से उसका विवाह तथा बाणासुर की देवताओं से मैत्री आदि का वर्णन काव्य में हुआ है । अपनी बेटी के अनिरुद्ध के प्रति प्रेम, पिता के विरोध, अन्त में पिता के हृदयपरिवर्तन तथा उषा एवं अनिरुद्ध के परिणय का वर्णन इस काव्य में हुआ है । उषा एवं अनिरुद्ध के परिणय तथा उनकी प्रेम विजय से अधिक महत्व काव्य में बाणासुर का ही हुआ है । श्रीकृष्ण की प्रेरणा से बाणासुर का देवों के प्रति विरोध सदा के लिए दूर हो जाता है ।

बाणासुर की देवताओं से मैत्री की एक घटना के वर्णन से युक्त `प्रेम विजय` नामक यह खण्डकाव्य प्रेम की महिमा का गान करने वाला एक विशिष्ट खण्डकाव्य है । उषा और अनिरुद्ध की प्रेम कथा को आधार बनाकर मलयालम में एक अत्यन्त मनोज्ञ एवं सफल खण्डकाव्य विरचित हुआ है --`उषानिरुद्धम्` ।[२]

१- कर्ण भूषणम् - उल्लूर परमेश्वरय्यर । (दे० मलयालम के खण्डकाव्य)

२- उषानिरुद्धम : वल्लत्तोल

द्रौपदी (नरेन्द्र शर्मा)

सन् १९६० ई० में द्रौपदी काव्य प्रकाशित हुआ । 'द्रौपदी' पाँच सर्गों में विभाजित एक खण्डकाव्य है, जिसमें महाभारत की कथा के एक महत्वपूर्ण अंश का प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है । इसमें कवि ने द्रौपदी को जीवनी शक्ति के रूप में अभिव्यक्त कर नारी की शक्ति का ज्वलंत चित्र खींचा लिया । पुरुष की विजय में हमेशा ही नारी की प्रेरणा तथा उसकी शक्ति की प्रधानता रहती है । महाभारत के सभी पात्रों की प्रतीकात्मक व्याख्या प्रस्तुत काव्य में हुई है । युधिष्ठिर आकाश, भीम समीर, अर्जुन पावक, नकुल जल तथा सहदेव क्षिति के प्रतीक हैं । इसी प्रकार धृतराष्ट्र अंधमानस के तथा उनके पुत्र अभिलाषाओं के प्रतीक रूप में उपस्थित हैं । पात्रों के ही नहीं, काव्य की महत्वपूर्ण घटनाओं को संगति प्रदान करने के लिए भी विविध प्रकार के रूपक बाँधे गये हैं । यों कवि ने प्रस्तुत काव्य में पौराणिक गाथा का प्रतीकात्मक रूप मनोवैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया है । इन प्रतीकों का संकेत तो 'महाभारत' में उपलब्ध है ।[१] रूपक काव्य की दुरूहता से युक्त होने पर भी यह एक सफल रूपकात्मक तथा मनोवैज्ञानिक खण्डकाव्य है ।

भूमिका (श्री रघुवीर शरण मित्र)

रामायण कथा पर आधारित यह खण्डकाव्य सन् १९६१ में प्रकाशित हुआ । इसमें श्रीराम द्वारा सीता के परित्याग तथा उनका माता भूमि के अन्तराल में समेट जाने की कथा का उल्लेख है । श्रीराम चन्द्र जी के द्वारा सीता देवी के परित्याग तथा सीता देवी के वाल्मीकि-आश्रम में निवास, लव-कुश का जन्म, सीता निर्वासन के बाद श्रीराम का पश्चा-त्ताप, उनका मानसिक संघर्ष, लक्ष्मण द्वारा श्रीराम को उद्बोधन तथा शासन के प्रति उन्मुख करना, अश्वमेध, अश्वमेध के घोड़े को वन में लव-कुश द्वारा बाँधा जाना, लव कुश द्वारा राम

१- ते पंचरथ मास्थाय भ्रातर : समलंकृता : ।
भूतानीव समस्तानि राजन् ददृशिरे तदा ।
- शांतिपर्व १।३७,

की सेना का विरोध तथा उनकी विजय, माता सीता का राम को अपने पुत्रों का परिचय देना, भूमि से जन्मी सीता का भूमि में ही समा जाना, ऋषिवर वाल्मीकि का लव-कुश को श्रीराम को सौंपना, उनके राज्याभिषेक आदि का वर्णन काव्य में हुआ है ।

वाल्मीकि के आश्रम में परित्यक्ता सीता का वास तथा उसका भूमि माता में अन्तर्लीन हो जाने की घटना मार्मिक रूप में वर्णित है । आठ सर्गों में काव्य की कथा-वस्तु का विभाजन हुआ है । कथा संगठन सुरुचिपूर्ण ढंग से हुआ है । वात्सल्य, करुण एवं शांत रस की अभिव्यंजना काव्य में हुई है ।

<u>प्रह्लाद (विक्रमसिंह `सिंह`)</u>

सन् १९६१ ई० में `प्रह्लाद` का प्रथम संस्करण निकला । हिरण्यकशिपु तथा प्रह्लाद की पौराणिककथा ही इस खण्डकाव्य का आधार है । सुरासुर संग्राम में देवों के साथ असुर हिरण्यकशिपु का संघर्ष हो जाता है तथा युद्ध में पराजित वह पलायन करता है । पलायन के बीच उसकी गर्भवती पत्नी देवों की सेना के हाथ पड़ जाती है । एक बेटा पैदा हो जाता है - प्रह्लाद । पिता देवों का जितना वैरी था उतना ही बेटा परम भक्त था । भगवान का नाम सदैव जपता था । क्रुद्ध पिता हमेशा अपने पुत्र को समझाता है । अन्त में स्वयं नरसिंह रूप हरि हिरण्यकशिपु द्वारा तोड़े गये खम्भे से अवतरित होता है तथा असुर को ईश्वरीय तत्व का रहस्य समझा देता है तथा जीवन से मुक्ति भी दे देता है ।

भक्त प्रह्लाद की परम भागवत् भक्ति तथा उसके महान् चरित्र का उद्घाटन ही कवि का लक्ष्य रहा है । काव्य में कथा का विकास आठ सर्गों में होकर हुआ है । काव्य विषय तथा क्रम की दृष्टि से यह एक सफल खण्डकाव्य है ।

<u>रणचण्डी (विश्वनाथ पाठक)</u>

श्री विश्वनाथ पाठक का खण्डकाव्य `रणचण्डी` सन् १९६१ ई० में प्रकाशित हुआ । `दुर्गासप्तशती` के `उत्तमचरित` की कथावस्तु के आधार पर पाठक जी ने प्रस्तुत काव्य

रचा है। देवी दुर्गा के चरित्र के दोनों पक्षों -- कोमल एवं कठोर का मार्मिक चित्रण काव्य में हुआ है। अपने भक्तों को अपने ही पुत्र मानकर सदा उनको मंगल प्रदान करती हुई देवी दुर्गा विराजमान है। अन्याय एवं उत्पीड़न से आर्त होकर देवगण माता के शरण में आये तो, माता के श्रीचरणों में उन्हें शरण मिली। देवी दुर्गा का अलौकिक सौन्दर्य देवों के लिए मातृत्व का प्रोज्ज्वल आलोक ही है। देवी के इस सौन्दर्य में शुंभ और निशुंभ मुग्ध हो गये। रूप की कामना से उनकी आँखें अंधी हो गयीं। उनके रूप-सुधा-पान के लिए वे आगे बढ़े तो देवी ने उनके बाहुबल की परीक्षा लेने का ही शुद्ध निश्चय किया। निर्बल पुरुष के सम्मुख आत्मसमर्पण करना देवी नहीं चाहती थी। इस कठोर बाहुबल की परीक्षा में देवी का रूप रणचण्डी का हो गया। उनके संहार नर्तन में शुंभ और निशुंभ दोनों का संहार हो गया।

देवी जो भक्तों के लिए माता के समान है वही क्रुद्ध होने पर रणचण्डी बन जाती है। नारी की महाशक्ति तथा उसके संहारकारी रूप का चित्रण इस काव्य में हुआ है। नौ सर्गों में प्रस्तुत काव्य की कथावस्तु चित्रित है। प्रस्तुत काव्य में देवी, अपने चरित्र के कारण मानवी के निकट पहुँच जाती है। देवी दुर्गा का चरित्र सचमुच नारी का ही सत्य चरित्र है। उसके चरित्र का अंकन मनोवैज्ञानिक तौर पर ही हुआ है। काव्य में रौद्र रस का सम्पूर्ण परिपाक हुआ है। यह एक छन्दोबद्ध काव्य है जिसमें विभिन्न छंदों का प्रयोग हुआ है। सर्ग-सर्ग में छन्द बदलने की पद्धति तो इसमें नहीं। काव्य रूप की दृष्टि से भी यह सफल काव्य है।

कोणार्क (रामेश्वर दयाल दूबे)

सन् १९६१ में प्रस्तुत काव्य का प्रकाशन हुआ। कोणार्क के सूर्य मन्दिर से सम्बन्धित कथा ही काव्य का विषय है। स्वर्गस्था माता की इच्छा पूर्ति के लिए उड़ीसा का राजा नरसिंह देव कोणार्क में एक सूर्य मन्दिर बनाने का निश्चय करते हैं। कोणार्क मन्दिर की रचना के मूल में महाशिल्पी विशु की करुण कथा भी अन्तर्हीन है। महाशिल्पी

बिशु बड़े कलाकार थे जो अपने दल के साथ मन्दिर निर्माण में लगे हुए थे । बारह वर्ष के अथक परिश्रम से मन्दिर लगभग पूर्ण हुआ, किन्तु किसी त्रुटि के कारण कलश स्तम्भ के ऊपर ठीक से बिठाया नहीं जा रहा था। शिल्पीगण तथा राजा चिन्तित हुए । राजा का [illegible] सुनकर बिशु का बेटा कलाकार धर्मपद आ जाता है तथा कलश को ठीक कर देते हैं । धर्मपद बिशु का इकलौता बेटा था जिसे अपनी पत्नी के पास छोड़ बिशु मन्दिर निर्माण के लिए आया हुआ था । कलश के ठीक हो जाने पर बिशु अत्यधिक प्रसन्न होते हैं, लेकिन अन्य शिल्पिगण युवा कलाकार पर ईर्ष्यालु हो जाते हैं तथा उनके वध कर देने का षड्यंत्र रचते हैं । महाशिल्पी को जब इसका पता चलता है तब वे अपने बेटे की खोज में निकल पड़ते हैं । लेकिन तब तक धर्मपद शिल्पियों की रक्षा के लिए संतोष देने हेतु अंधकार में विलीन हुए थे ।

प्रस्तुत खण्डकाव्य में उड़ीसा के कोणार्क मन्दिर सम्बन्धी ऐतिहासिक घटना का वास्तविक अङ्कन हुआ है । काव्य की कथावस्तु पाँच सर्गों में विभक्त है । अंतिम सर्ग आँसुओं से लबालब भरा हुआ है । महाशिल्पी बिशु की करुणा कथा सबको रुलाने वाली है । काव्य में करुण रस की अभिव्यंजना पूर्णरूपेण हुई है । 'कोणार्क' खण्डकाव्य एक रस-मयी रचना है जिसकी प्रसाद गुणमयी शैली मर्मभेदक तथा रचनाशिल्प रोचक एवं सरल है ।

उर्वशी (श्री रामधारी सिंह दिनकर)

'उर्वशी' श्री दिनकर जी का एक बहुचर्चित काव्य ग्रन्थ है जिसका प्रकाशन सन् १९६१ ई० में हुआ । पुरुरवा और उर्वशी के पौराणिक आख्यान पर आधारित एक सफल रचना है यह । पुरुरवा उर्वशी का प्रेम-प्रसंग ही काव्य का आधार है । कथावस्तु तथा घटनाओं से अधिक विचारधारा का ही काव्य में प्रामुख्य है । इस प्रेमाख्यान द्वारा दिनकर जी ने मानव मन के प्रमुखतम तत्त्व 'काम' का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है । कामवासना की परा-काष्ठा के उपरांत जिस आध्यात्मिक अनुभव की कमनीय दशा होती है, उसकी ओर संकेत

काव्य में हुआ है । प्रस्तुत काव्य में प्रेमी युगल के `आयु` नामक पुत्र के उत्पन्न होने तथा उसके राज्याभिषेक तक का वर्णन है । काव्य की समस्त कथावस्तु का विकास पाँच अंकों में होकर हुआ है । इसकी कथा की विस्तृति भाषा-शैली की गरिमा तथा महान् सन्देश के कारण कतिपय विद्वानों ने `उर्वशी` को महाकाव्य माना है । लेकिन जीवन के वैविध्य एवं सर्वांगपूर्ण चित्रण के अभाव में - जीवन के एक ही महत्त्वपूर्ण पक्ष - पुरुरवा-उर्वशी के प्रेम-प्रसंग - को आधार बनाकर विरचित यह काव्य खण्डकाव्य के ही निकट का है । नाट्यशैली से युक्त तथा गीतिगुणपूर्ण होने कारण इसे गीति-नाट्य मानने वाले भी हैं । रंगमंचीय गुण के अभाव में यह गीतिनाट्य न होकर नाटकीय शैली का खण्डकाव्य ही रह जाता है ।

<u>चित्रकूट</u> (त्रिवेदी रामानन्द शास्त्री)

त्रिवेदी जी का खण्डकाव्य चित्रकूट सन् १९६२ ई० में प्रकाश में आया । राम-कथा का मार्मिक प्रसंग-चित्रकूट में श्रीराम तथा भरत का मिलन - ही प्रस्तुत काव्य का विषय है । वनवास के दिनों चित्रकूट में विचरण करके श्रीराम, सीता तथा लक्ष्मण ने उसकी भूमि को पुनीत किया था । श्रीराम सीता तथा लक्ष्मण के वनगमन के पश्चात् की गतिविधियों ने कैकेयी को पश्चातापदग्ध किया । अयोध्यावासियों सहित तीनों मातायें तथा भरत वन में रहने वाले उन तीनों रत्नों को अयोध्या लौटा लेने के लिए जाते हैं । कैकेयी माता श्रीराम के सम्मुख अपने पश्चाताप की करुण कहानी बताती है तथा भरत भी अपने भाई की हार्दिक भेंट करते हैं । अन्त में श्रीराम की पुनीत पादुकायें पाकर भरत आश्वस्त हो जाते हैं । श्रीराम चौदह साल के बीतने पर तुरंत ही राज्य आने की बात कहकर सबको सांत्वना देते हैं तथा सभी आगत चित्रकूट से अयोध्या लौट जाते हैं ।

<u>गुरु दक्षिणा</u> (विनोदचन्द्र पाण्डेय विनोद)

महाभारत के एकलव्य-प्रसंग[1] पर आधारित प्रस्तुत खण्डकाव्य का प्रकाशन सन्

१- महाभारत : आदिपर्व - अध्याय १३२.

१९६२ ई० में हुआ । प्रस्तुत काव्य में कवि ने सदियों से उपेक्षित तथा कलंकित मानवता के मूक प्रतीक एकलव्य के वास्तविक चरित्र को समाज के सम्मुख उपस्थित करने का सफल यत्न किया है । कथावस्तु तो एकलव्य का गुरु दक्षिणा प्रसंग है जो परम्परागत है । कवि ने उसे नवीन विचारों के साथ प्रस्तुत किया है । निम्न वर्ग में जन्म लेकर भी निरन्तर अभ्यास के बल पर उच्च पद की प्राप्ति करने वाले एकलव्य का चरित्र महान् ही है । आदर्श शिष्य, अनोख लक्ष्यवेधक अनवरत अभ्यास तथा परम गुरु भक्त एकलव्य का देदीप्यमान चित्र काव्य में उपस्थित है । अन्त में गुरु द्रोण की इच्छा पर अपना अंगूठा काटकर दक्षिणा के रूप में प्रस्तुत करने वाला एकलव्य अपने चरित्र की चरमसीमा को पहुँचता है ।

सर्गरहित शैली में, प्रभावान्विति के साथ, लिखी हुई लघु शैली में प्रस्तुत खण्ड-काव्य का सृजन हुआ है ।

प्राणार्पण (बालकृष्ण शर्मा 'नवीन')

अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी के प्राणार्पण पर १९३२-१९३३ में रचित यह खण्डकाव्य सन् १९६२ में प्रकाशित हुआ । भारत की स्वतंत्रता तथा उसकी एकता के यत्न में भारत माता के अमर पुत्र गणेशशंकर जी को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा । अंग्रेजों के अत्याचारों ने भारतीयों में स्वतंत्रता का मोह जगाया । गांधीजी के प्रयत्नों ने भारत-वासियों में नवजागरण फैला दिया । लेकिन अंग्रेजों की फूट की नीति ने हिन्दू एवं मुसल-मानों में फूट फैला दी । फलतः हिन्दू-मुस्लिम विद्रोह छिड़ गया । यह प्रलयंकर विभी-षिका देखकर जननायक गणेशशंकर विचलित हो उठे । अस्त पर नारियों को उबारने में दिन-रात वे व्यस्त रहे । दोनों में एकता का भाव उत्पन्न करने तथा मानवता का संदेश समझाने का आपने श्रम किया । भीषण-हंगामा मच रहा था और इसमें मुसलमानों का एक झुंड आ गया और उनमें से एक ने गणेशशंकर में भाला भोंक दिया । गणेशशंकर मानवता हेतु अपने प्राणों का अर्पण कर अमर हो गये ।

१९३१ में घटित विद्यार्थी जी के आत्मार्पण पर रचित यह खण्डकाव्य काव्यनायक के विशिष्ट चरित्र को उद्घाटित करने में सर्वदा समर्थ हुआ है । चार सर्गों में काव्य का

विकास हुआ है। सर्गों के लिए 'आहुति' शब्द प्रयुक्त है। इसी घटना पर आधारित शिवाराम जी का 'आत्मोत्सर्ग' नामक एक खण्डकाव्य निकला है।

कौन्तेय कथा (उदयशंकर भट्ट)

भट्ट जी का यह खण्डकाव्य सन् १९६२ ई० में प्रकाशित हुआ। महाभारत में वर्णित शिव-अर्जुन युद्ध के उपाख्यान को इसमें अपने खण्डकाव्य का रूप दे दिया है। द्यूत में पराजित पाण्डव वनवास में कष्टपूर्ण जीवन बिता रहे थे। अर्जुन, इन्द्र के उपदेश के अनुसार युद्ध के अधिष्ठाता देवता महादेव की तपस्या में लग जाते हैं। अर्जुन की परीक्षा करने के लिए शिव-पार्वती किरात वेष में आ जाते हैं। एक सूकर को शिवजी अर्जुन के पास भेज देते हैं। सूकर पर बाण चलाये दुर्योधन के पास आकर शिवजी उस पर अपना अधिकार जमाते हैं। दोनों के बीच का वाद-विवाद आपस के युद्ध में परिणत हो जाता है। अर्जुन की वीरता पर प्रसन्न शिवजी उन्हें अपराजेय अस्त्र की भेंट करते हैं। महाभारतीय कथा के अनुकूल ही इसमें कथा संयोजना हुई है।

संशय की एक रात (श्री नरेश मेहता)

प्रस्तुत काव्य सन् १९६२ ई० में प्रकाशित हुआ। राम-रावण युद्ध के पूर्व राम के मन में उठने वाले संशय का ही काव्य में चित्रण हुआ है। कुरुक्षेत्र युद्ध के समय अर्जुन के मन में भी ऐसा ही संशय उठा था। श्रीराम के मन में रावण द्वारा अपहृता सीता देवी को प्राप्त करने, तथा धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिए युद्ध करने के विषय में संशय उत्पन्न होता है। श्रीराम की शंकाओं का निवारण दशरथ और जटायु की प्रेतछाया तथा मंत्री परिषद् की बैठक करती है। स्वयं दशरथ की दिव्यात्मा छाया रूप में अवतरित होकर अपने पुत्र को उद्बुद्ध करती है —

हे पुत्र।
संशय या शंका नहीं
कर्म ही उत्तर है।

यह जिसकी छाया है ।
उस धर्म को वरो ।[1]

यह सन्देश राम के मन के संशय को दूर करने में समर्थ हो जाता है तथा लक्ष्मण और हनुमान के तर्क भी सुनकर वे इस निर्णय पर पहुँच जाते हैं कि राम-रावण युद्ध व्यक्तिगत नहीं बल्कि सर्वजन मंगल हित है । यों इस काव्य में श्रीराम के मन में उठने वाला संशय, एक निर्णय की स्थिति तक पहुँच जाता है । वीररस पूर्ण यह काव्य नाटकीय शैली का मिलता है ।

स्वतंत्रता की बलिवेदी (जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द')

सन् १९६२ ई० में प्रस्तुत खण्डकाव्य का प्रकाशन हुआ । भारतीय स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अपनी बलि चढ़ाने वाले कुछ आंचलिक वीर सपूतों की यह कहानी है । भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भारत के आंचलिक वीरों ने भी बढ़ा योग दिया । अपने ग्राम में एक विद्यालय खोलकर श्यामा दीदी ग्रामीण बालक-बालिकाओं को उद्बुद्ध बनाती है । चन्दन नामक अछूत बालक तथा श्यामादीदी के भाई की बेटी मृदुला उस विद्यालय के प्रिय छात्र रहे। गांव की पढ़ाई के पूर्ण होने पर श्यामादीदी उन दोनों को नगर के कालेज भेज देती है । स्वतंत्रता संग्राम के जड़ पकड़ने पर विद्यालय छोड़कर जो विद्यार्थी निकले उनमें चन्दन तथा मृदुला प्रथम थे । सहकर्म उन दोनों में प्रेम के अंकुर को पनपने देता है । मृदुला के माँ-बाप पहले विरोध तो करते हैं । श्यामादीदी जब जेल में बन्द हो जाती है, उसकी मृत्यु के क्षण निकट आ गये तो मृदुला के माँ-बाप उनको विवाह की सम्मति देते हैं । लेकिन चन्दन और मृदुला इस दृढ़ निश्चय पर अटल रहे कि भारतमाता की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही वे शादी करेंगे । आखिर स्वतंत्रता-संग्राम के जड़ पकड़ लेने पर सारे विद्यार्थी संग्राम में कूद पड़ते हैं तथा अपनी बलि चढ़ाते हैं । मातृभूमि के स्वातंत्र्य के लिए अपनी बलि चढ़ाने वाले वीरों के आधार पर निर्मित यह खण्डकाव्य कला की दृष्टि से भी सफल है ।

१- संशय की एक रात : नरेश मेहता, पृ० ४७.

महारानी लक्ष्मीबाई (श्यामनारायण प्रसाद)

सन् १९६२ ई० में प्रस्तुत काव्य प्रकाशित हुआ । सन् सत्तावन के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में वीरता के साथ लड़कर वीरगति को प्राप्त हुई रानी लक्ष्मीबाई की कथा इसमें वर्णित है । अंग्रेजों के अत्याचारों से पीड़ित उन्होंने उन्हें भारत से बाहर करने का निश्चय किया । स्वयं घोड़े पर चढ़कर, कर में कृपाण लेकर युद्ध मैदान में वे कूद पड़ीं । अंग्रेजों पर वीरता के साथ वार करते-करते आखिर उन्होंने मरण का वरण किया । रानी लक्ष्मीबाई की वीरता का मार्मिक अंकन इस खंडकाव्य में हुआ है ।

रत्नावली (हरिप्रसाद 'हरि')

प्रस्तुत नायिका प्रधान खण्डकाव्य का प्रकाशन सन् १९६३ ई० में हुआ । तुलसी की परित्यक्ता पत्नी रत्नावली के चरित्र का उज्ज्वल चित्रण काव्य में हुआ है । लोकमंगल हेतु अपने पति को त्यागने के लिए सन्नद्ध यह नारी सचमुच अद्भुत चरित्र वाली है । अपनी पत्नी पर अत्यधिक आसक्त तुलसीदास को रत्नावली ने भगवान श्रीरामचन्द्र की ओर उन्मुख कर दिया । पति पत्नी की वाणी से प्रेरित हुए । तुलसीदास योगी बनकर घर से प्रवासी भी हुए । रत्नावली को अपना पति तो गया, लेकिन भारतवर्ष के लिए, हिन्दी साहित्य के लिए एक अमर विभूति मिल गयी । सचमुच रत्नावली का त्याग महत्वपूर्ण ही है । नारी का यह त्याग विश्वमंगल हेतु हुआ है, जो सचमुच भारतीय नारी के चरित्र के अनुकूल है । परित्यक्ता रत्नावली के मानसिक संघर्षों का उज्ज्वल वर्णन काव्य में मिलता है । गोस्वामी तुलसीदास तथा रत्नावली के सम्बन्ध में प्रचलित कथा के आधार पर ही प्रस्तुत काव्य में कथा योजना हुई है ।

'रत्ना की बात'[१] इसी प्रसंग पर आधारित एक रचना है जिसमें कथा वर्णन स्वयं रत्नावली के उद्गारों के रूप में हुआ है । इसमें कवि तुलसीदास के पत्नीत्याग के प्रसंग का हृदयस्पर्शी वर्णन करते हैं ।

१- रत्ना की बात : प्रेमनारायण टंडन ।

काकदूत (काका हाथरसी)

काकाजी का यह खंडकाव्य सन् १९६४ ई० में प्रकाश में आया । 'मेघदूत', हंसदूत, पवनदूत आदि की परम्परा में अपने योगदान के रूप में आपकी यह कृति है । कवि का कहना है कि इस विलक्षण पक्षी पर खण्डकाव्य ही नहीं एक महाकाव्य भी लिखा जा सकता है[1] । 'उत्तर भारत में प्रसिद्ध मथुराजी से तीस किलोमीटर पूरब के हाथरस नगर में रहते' काका जी अपनी पत्नी के पास एक कौए को दूत बनाकर भेजने का उपक्रम करते हैं । कौए के दूत बनने की योग्यता, यात्रा के बीच के स्थानों का वर्णन, पत्नी को देने का सन्देश आदि से काव्य भरा है । काव्यांत में पड़ोसिन के पास गयी हुई पत्नी के लौट आने का भी वर्णन है । काकाजी का यह काव्य हास्यरस प्रधान खंडकाव्यों की कोटि में आता है ।

पाषाणी (शरणबिहारी गोस्वामी)

'पाषाणी' अहल्या की पौराणिक कथा पर आधारित एक खण्डकाव्य है जिसका प्रथम संस्करण सन् १९६५ में निकला । गौतम मुनि की पत्नी के शाप एवं शाप मोक्ष की कथा ही प्रस्तुत काव्य की विषयवस्तु है । प्रस्तुत काव्य में पौराणिक कथा का उसी रूप में वर्णन नहीं हुआ है । लेकिन आजकल के युग के अनुरूप परिवर्तन सहित ही यह प्रस्तुत हुआ है । काव्य में यत्र-तत्र कवि की मौलिक उद्भावनाओं का प्रभाव है । इस कारण अहल्या सम्बन्धी यह काव्य अलौकिकता से लौकिकता की ओर आया है तथा स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक भी हुआ है ।

ब्रह्मा ने अहल्या की अप्रतिम सुन्दर सृष्टि की । मुनि गौतम और इन्द्र सहपाठी थे । प्रजापति के मन में इस बात पर संघर्ष उठता है कि अहल्या को किसे सौंप दें संयमी ऋषि गौतम को अथवा रसभोगी देवेन्द्र को । आखिर अहल्या का परिणय मुनि गौतम से होता है । अपनी भावनाओं को दबाकर वह अपूर्व रूपवती युवती मुनि गौतम के साथ

१- काकदूत, 'काकदूत' की भूमिका, पृ० १२.

संयमी जीवन बिताती थी । एक रात में चन्द्रमा को साथ लेकर छल से देवेन्द्र, मुनि गौतम के आश्रम आता है तथा उससे अभिसार करता है । मुनि उस अवसर पर गंगास्नान के लिए गये हुए थे । लौट आने पर क्रुद्ध मुनि ने दोनों को शाप दे दिया । इन्द्र सहस्रयोनी का हो गया तथा अहल्या का हृदय जड़वत् हो गया । (अहल्या का शिला न होकर, उसके हृदय के जड़वत् बन जाने का उल्लेख कवि की मौलिक उद्भावना है।) जड़ बन गयी अहल्या को पहले से ही महर्षि विश्वामित्र ने इसकी सूचना दे दी कि श्रीराम के आगमन तथा उनके दर्शन से उसको शाप मोक्ष प्राप्त होगा । यह भी कवि की मौलिक उद्भावना है । उक्त घटना को अधिक स्वाभाविक रूप देने तथा उस प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिक बनाने का कवि का श्रम सराहनीय है । यहाँ ऐसा ही चित्रण हुआ है कि राम द्वारा अहल्या का उद्धार मनोवैज्ञानिक उपचार ही है ।

इस प्रकार अहल्या की पौराणिक कथा को युगानुरूप परिवर्तन के साथ प्रस्तुत करने में कवि सफल हुए हैं । आठ सर्गों में प्रस्तुत खण्डकाव्य में कथा वस्तु वर्णित है ।

सौमित्र (श्री रामेश्वर दयाल दुबे)

सन् १९५५ ई० में 'सौमित्र' का प्रकाशन हुआ । रामायण कथा ही प्रस्तुत काव्य का आधार है । प्रस्तुत काव्य में त्याग शौर्य एवं सेवा की प्रतिमूर्ति लक्ष्मण के उज्ज्वल चरित्र का मार्मिक चित्रण हुआ है । इसमें कवि ने बड़े चातुर्य से माता सुमित्रा, पिता दशरथ, भाभी सीता तथा भाई श्रीराम के मुँह से लक्ष्मण के प्रति उनकी गंभीर प्रतिक्रिया को व्यक्त करने की सफल कोशिश की है । लक्ष्मण के चरित्र की मार्मिक अभिव्यक्ति करने वाला यह काव्य सफल बना है जिसके अनेक प्रसंग मार्मिक तथा प्राणवान हैं । लक्ष्मण की वीरता व उदात्त सेवाभाव का कलात्मक ढंग से चित्रण हुआ है । प्रसाद गुण युक्त, प्रांजल, प्रवाहपूर्ण भाषा शैली इस खण्डकाव्य को और भी मनोज्ञ बनाने में सक्षम है ।

कूबरी (रामनारायण अग्रवाल)

`कूबरी` ब्रजभाषा में लिखित एक खण्डकाव्य है जिसका प्रकाशन सन् १९६५ ई० में हुआ । श्रीमद्भागवत का कुब्जा प्रसंग ही काव्य का आधार है । लेकिन कवि ने अपने खण्ड-काव्य को नूतन कल्पनाओं से अभिनव एवं मौलिक बनाया है । प्रस्तुत काव्य में कृष्ण की प्रेमिका कुब्जा की मनोदशा का हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है । कूबरी के कृष्ण प्रेम, प्रेमसाफल्य तथा उसके देहत्याग की कथावस्तु इस काव्य में वर्णित है । कूबरी के चरित्र का मनोवैज्ञानिक चित्रण काव्य में उपस्थित है । इसमें कुब्जा को गुरु गर्ग की शिष्या मानकर उसे पूर्वजन्म की सुर्पणखा माना है । ऐसा संकेत गर्ग संहिता में विद्यमान है ।[१] उपेक्षिता कुब्जा के अन्तर्मन का थाह कवि ने लगाया है तथा उसका मार्मिक चरित्र चित्रण भी प्रस्तुत किया है । नौ सर्गों में काव्य की कथावस्तु का विकास हुआ है । काव्य की भाषा शैली सुकोमल ललित पदावली युक्त मंजु ब्रजभाषा की है ।

मुक्तियज्ञ (सुमित्रानन्दन पंत)

`मुक्तियज्ञ` काव्य का प्रकाशन सन् १९६५ ई० में हुआ । यह पंतजी के प्रख्यात काव्यग्रन्थ `लोकायतन` का एक अंश है । काव्यांश होते हुए भी वह अपने आप में पूर्ण है । गान्धी जी के नेतृत्व में लड़े गये भारत के स्वतंत्रता-संग्राम से सम्बन्धित एक खण्डकाव्य है यह । इसमें भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का आद्योपांत वर्णन हुआ है । भारतवर्ष के इतिहास में स्वातंत्र्य संग्राम का इतिहास अत्यन्त महत्व का है । पन्त जी ने पहली बार इस युग की घटनाओं का ऐतिहासिक चित्रण प्रस्तुत किया है । भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के रंग-मंच में गांधीजी के आगमन से लेकर उनके प्रयत्न में स्वराज्य प्राप्त करने तक की ऐतिहासिक कथा इसमें चित्रित है । भारतीय मुक्तियज्ञ में जननायक गांधी जी ने जो महान योग दिया उसका वर्णन काव्य का मार्मिक प्रसंग है । सन् १९२९ की पूर्ण स्वतंत्रता की मांग, उसके बाद के नमक आंदोलन, भारतीयों के विद्रोह एवं कुंठा, कांग्रेस के प्रयत्न, स्वतंत्रता प्राप्ति आदि घटनाओं का ऐतिहासिक चित्रण काव्य में प्रस्तुत है ।

१- कूबरी ; अपनी बात : रामनारायण अग्रवाल, पृ० ३.

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की सामाजिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में विरचित हिन्दी का पहला खण्डकाव्य है `मुक्तियज्ञ` । आधुनिक इतिहास से ही कवि ने सामग्री चुन ली है । इस काव्य की एक ही प्रमुख घटना है - सन् १९२१ से १९४७ तक की स्वतंत्रता की लड़ाई । इसी एक घटना के फैलाव में अन्य अनेकों घटनाओं व विचारधाराओं को समाहित करने का प्रयत्न हुआ है । आख्यान के प्रस्तुतीकरण तथा पात्रों के चरित्र चित्रण में कवि ने काल्पनिक तत्वों का समावेश बिलकुल नहीं किया है ।

काव्यरूप की दृष्टि से प्रस्तुत रचना खण्डकाव्य की कोटि में आ जाती है । "इस कृति को हम परम्परागत काव्यरूपों के अन्तर्गत नहीं रख सकते, क्योंकि इसमें कवि का उद्देश्य न तो किसी कथानक को चमत्कारपूर्ण ढंग से नियोजित करना है और न किन्हीं पात्रों का चित्रण करना ।"[1]

आत्मजयी (कुंवर नारायण)

सन् १९६५ में `आत्मजयी` खण्डकाव्य प्रकाशित हुआ । कठोपनिषद में वर्णित नचिकेता-यम प्रसंग ही काव्य की कथा का आधार है । इस काव्य में पौराणिक आख्यान को कवि ने अपने सृजनशील कल्पना के सहारे नये रूप में ढालकर युगानुकूल धरातल पर चित्रित किया है ।

`आत्मजयी` पिता-पुत्र के संघर्ष की कहानी है । अपने पिता वाजश्रवा की लौकिक स्थिति के कारण नचिकेता अपार समृद्धि का उत्तराधिकारी हो सकता था लेकिन पुत्र इस लौकिक सुख के पक्ष में नहीं होता । इस प्रकार पिता-पुत्र का संघर्ष दो मान्यताओं का संघर्ष बन जाता है । इस काव्य में सुख से उकताये पूंजीपतियों के विद्रोही लड़कों का जीवन दर्शन ही चित्रित है । जीवन मूल्यों के विस्तृत विश्लेषण के कारण यह काव्य बहुत प्रौढ़ एवं चिंतनशील बन गया है । बौद्धिकता काव्य की मुख्य विशेषता है । काव्यनायक नचिकेता की मानसिक परिस्थितियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण काव्य में हुआ है । कवि-

---

१- मुक्तियज्ञ की भूमिका - परिचय - सावित्री सिन्हा, पृ० २०.

पर सुंदर नारायण ने अपनी प्रस्तुत प्रौढ़ कृति का निर्माण मुक्तछन्द में किया है ।

मलयालम के प्रसिद्ध कवि श्री जी० शंकर कुरुप का भी एक लघुकाव्य उपलब्ध है -- ' एक वीर नचिकेता ' -- जिसमें नचिकेता की कथा का मनोविश्लेषणात्मक चित्र उपस्थित है ।[१]

अजेय पौरुष (शंकर सुल्तानपुरी)

प्रस्तुत काव्य सन् १९६६ में प्रकाशित हुआ । भारतीय ऐतिहासिक वीर महाराणा प्रताप के अजेय पौरुष का वर्णन ही प्रस्तुत काव्य का विषय है । हल्दीघाटी के युद्ध मैदान में मुगल बादशाह अकबर तथा वीर राणा के बीच जो भयानक युद्ध हुआ उसका वर्णन हुआ है । पराजित राणा एक बार तो मुगलों से सन्धि कर लेते हैं, किन्तु बाद में राजपूती शौर्य उन्हें सचेत कर देते हैं तथा देश की स्वाधीनता के लिए उड़ते-लड़ते वे मरण का वरण करते हैं । राणा प्रतापसिंह की वीरता तथा बलिदान की ऐतिहासिक कथा का वर्णन ही इस काव्य में हुआ है ।

चक्रव्यूह (विनोदचन्द्र पाण्डेय 'विनोद')

प्रस्तुत खण्डकाव्य सन् १९६७ ई० में प्रकाशित हुआ । महाभारतीय आख्यान के आधार पर विरचित प्रस्तुत खंडकाव्य में अर्जुन पुत्र वीर अभिमन्यु के चक्रव्यूह-भेदन का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत हुआ है । इस विषय पर पहले ही - अभिमन्यु-वध, अभिमन्यु-पराक्रम जैसे अनेकों खण्डकाव्य विरचित हुए हैं ।

प्रतिपदा (डा० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण')

'प्रतिपदा' नामक ऐतिहासिक खण्डकाव्य का प्रकाशन सन् १९६८ ई० में हुआ । काव्य की कथावस्तु मेवाड़ के इतिहास पर आधारित है । प्रतिपदा के दिन मेवाड़ी वीर

१- एक वीर नचिकेता -- जी शंकर कुरुप
रूपांतर -- नारायण पिल्लै एंड लक्ष्मीचन्द्र जैन ।

आखेट के लिए जाते हैं । ऐसे ही एक आखेट का वर्णन प्रस्तुत खण्डकाव्य में हुआ है । वे वीर फागुन मास की प्रथम प्रतिपदा को अवश्य आखेट के लिए जाते थे, भावी जयाजय के लिए उसकी सफलता को शुभाशुभ मानते थे ।[1] प्रतिपदा के दिन का यह आखेट मेवाड़ की पूर्व रूढ़ प्रथा है । प्रस्तुत खण्डकाव्य में शाकम्भराधीश शाहीदास के दक्षिण कर वीर दुर्जय-सिंह के आखेट का चित्रण हुआ है । इतिहास के पन्नों का प्रश्रय लेकर इसमें दुर्जयसिंह के चरित्र का चित्रण किया है ।

मुख्यतया प्रस्तुत खण्डकाव्य में प्रतिपदा के दिन के एक आखेट का मार्मिक चित्रण उपस्थित हुआ है । आखेट के वर्णन के साथ इस काव्य में शिष्टाचार, युद्ध आदि का वर्णन भी किया गया है । मेवाड़ी वीरों के चरित्र अंकित करने तथा तत्कालीन प्रथाओं के चित्रण में खण्डकाव्यकार सफल दिखते हैं ।

सुनन्दा (सियारामशरण गुप्त जी)

'सुनन्दा' खण्डकाव्य पूर्व रचित होने पर भी सन् १९५८ में ही प्रकाशित हुआ । एक प्रेमिका नारी के हृदय-व्यापारों का बहुत ही हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत काव्य में हुआ है । मनाक नगर में अमल वंश का प्रतिष्ठित राज्य है । अपनी प्रतिष्ठा के कारण रंगवंश अधिक गर्वित है । वहाँ के वर्तमान राजकुमार ने शासन भार अपनी छोटी रानी को सौंपा था । रानी को राजकुमार का यह रूप प्रिय नहीं था । राज्य में कुछ अप्रत्याशित घटनायें घटती हैं तथा देश निवासी शंकित हो जाते हैं । रानी की आज्ञा से नगर के फाटक बन्द किये जाते हैं जिससे विद्रोही बाहर न निकल सकें तथा देशवासी अपने घरों में चैनपूर्वक रह सकें । काव्य की कथा का प्रारम्भ एक घने जंगल में होता है । राजकुमार उस ओर आ रहे हैं । राजकुमार का प्रिय मित्र सुदर्शन भी उस जंगल में पहुंच जाता है । राजकुमार की प्रेमिका नन्दा उस जंगल के उस पार मकर मालिनी के तट पर के लौह दुर्ग में बन्दिनी थी । साथ ही

१- प्रतिपदा : दो शब्द, पृ० २.

उसकी सखी चम्पा भी है । चम्पा सुरंजन की प्रेमिका है । दोनों ही प्रेमिकायें अपने प्रेमियों की प्रतीक्षा में लौह दुर्ग में पड़ी हुई हैं । उन दोनों की प्रेम-प्रतीक्षा का ही चित्र काव्य में खिंचा हुआ है ।

`रत्ना की बात` (प्रेमनारायण टंडन)

सन् १९६८ में `रत्ना की बात` काव्य प्रकाशित हुआ । महाकवि तुलसीदास की परित्यक्ता पत्नी रत्ना के उद्गारों का वर्णन प्रस्तुत काव्य का विषय है । अपने पत्नी के प्रति प्रेम में मग्न तुलसी को रत्ना ने भगवान के प्रति उन्मुख कर दिया तथा पति गृहत्यागी हुआ । अपने पति के चले जाने के बाद रत्ना अनंत व्यथा का अनुभव करती है । उसकी व्यथा ही उद्गारों के रूप में काव्य में प्रकट हुई है । कभी-कभी वह अपने कार्य को उचित समझती है तो कभी अनुचित । वह कहती है कि लोग पति को निष्कासित करने वाली उस पत्नी की भर्त्सना करेंगे । लेकिन उसे यह विश्वास है कि प्रियतम ऐसा मानेंगे नहीं । संयोग के दिन पल के समान कटे, पर विरह के युग काटते न कटते । विरह व्यथा में व्याकुल नारी के मन में विभिन्न प्रकार की ऐसी विचारधारायें उठती हैं । कभी वह क्षुब्ध होकर पति को भला-बुरा कहती है --

`निष्ठुर ! हाथ पकड़ा था जिसका प्रेम से
स्वनामांकित मुद्रिका पहनायी थी, जिसे
परित्याग कर उसे आज साधु बने
बने हो, तब साधुता तो समझूँगी मैं
ध्यान से भी हटा दें जो मुझ को अपने ।`

कभी वह अपने कार्य को ठीक समझती है कि वह जान लेती है कि उसका पति रामचरितमानस लिखने लगा है । अपने पति के प्रयास के सफल होने के लिए वह प्रार्थना करती है ।

विरहिणी रत्ना के मन में उठने वाले विचारों का कवि ने मनोविश्लेषणात्मक चित्रण किया है । विभिन्न मानसिक स्थितियों के बीच रहने वाली नायिका के विचारों के वर्णन में कहीं-कहीं पुनरावृत्ति भी आ गयी है । काव्य रूप की दृष्टि से यह विचारात्मक गीतिगुणयुक्त खण्डकाव्य की श्रेणी में आता है ।

द्रोण (रामगोपाल रुद्र)

रुद्र जी का खण्डकाव्य द्रोण का प्रकाशन सन् १९५८ ई० में हुआ। पौराणिक कथा पात्र द्रोण के व्यक्तित्व के संघर्षों का चित्रण काव्य में मिलता है। आचार्य द्रोण के जीवन संघर्ष का मनोवैज्ञानिक एवं नवीन परिवेशानुकूल चित्रण इसमें प्रस्तुत है। आचार्य द्रोण पांडव एवं कौरवों के गुरु बन गये। गुरुवर को स्नान देकर अर्जुन द्वारा कारण पूछ लेने पर द्रोण अपने दुःखपूर्ण जीवन की कथा का वर्णन करते हैं। विद्या सीख लेने पर भी उनकी दशा कारुणिक थी --

"फिर भी कैसे सब कुछ पाकर भी मैं दरिद्र
विद्या का यह अपमान। शक्ति का यह प्रमाद।"[१]

बचपन में द्रुपद उनका मित्र दोस्त था। अपने राजा बनने पर अपने बालसखा द्रोण को अर्ध-राज्य तक देने की बात उसने बतायी थी। विद्याध्ययन के बाद द्रुपद राजा हुए तथा द्रोण को दारिद्र्य ही हाथ आया। दूध माँगने तथा दूध के लिए हठ करने वाले अपने बेटे को 'आटे का जल' दूध समझकर पीते देख उनका पितृहृदय क्रंदन कर उठा। अपनी पत्नी के द्वारा राजा द्रुपद की याद दिलाने पर वह एक दिन द्रुपद से मिलने राजधानी जाता है। लेकिन नशीले द्रुपद ने उसे पहचाना तक नहीं। द्रोण अपमानित होकर लौट आया। वहाँ से स-परिवार वे कृपगृह पहुँचे वहाँ से ही वे पांडव एवं कौरवों के गुरु नियुक्त हुए। प्रिय शिष्य अर्जुन यह सुनकर राजा द्रुपद को युद्ध में पराजित करके बन्दी बनाकर द्रोण के सम्मुख लाये। लेकिन आचार्यवर ने उसे क्षमा कर दिया। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भी लाचारी के कारण ही वे भागभाग् हुए थे। अर्जुन से लड़ना भी वे नहीं चाहते थे, पर अपने को कायर कहलाना ही अनुचित समझते थे। इस संघर्ष में पड़कर, वे आखिर युद्ध करने का ही युद्ध निश्चय करते हैं। अनेकों व्यूह बनाकर आपने पाण्डव पक्ष के अनेकों महारथियों को कालपुर भेज दिया। पाण्डव के एक महारथी की हत्या करने के लिए द्रोण चक्रव्यूह का निर्माण करते हैं। अर्जुन संसप्तक युद्ध के लिए गये थे तथा कृष्ण भी उनके साथ थे। अर्जुन पुत्र अभिमन्यु चक्र तोड़ने-

---

१- द्रोण : रुद्रजी, पृ० २.

आये और उनकी वीर मृत्यु हुई । कुरुक्षेत्र युद्ध के चौदहवें दिन के युद्ध में अर्जुन ने अपने पुत्र हंता जयद्रथ का वध किया । फिर आचार्य द्रोण के रक्षित सेनापतित्व का पन्द्रहवाँ दिन आया । भीषण संग्राम के बीच 'अश्वत्थामा की मृत्यु' की वाणी युधिष्ठिर के मुंह से सुन लेने पर गुरुवर शस्त्र छोड़ बैठे तो धृष्टद्युम्न ने उनका रुण्ड मुण्ड से अलग कर दिया ।

'परीक्षित्' (डा० शांतिभारद्वाज 'राकेश')

श्री शांति भारद्वाज 'राकेश' का प्रस्तुत खण्डकाव्य सन् १९६६ में प्रकाशित हुआ । राजा 'परीक्षित्' की पौराणिक कथा के यत्किंचित भागों का संकेत सूत्र रूप में देकर प्रस्तुत काव्य में कवि ने एक नितांत मौलिक रूपक-योजना की है । पाण्डवों के महाप्रयाण के बाद राजा परीक्षित् हस्तिनापुर में सम्राट के पद पर अभिषिक्त हुए । उनकी सेना द्वारा सुरक्षित साम्राज्य में कलियुग का प्रवेश हो गया । राजा ने अधर्म के कारणस्वरूप कलियुग को मारने के लिए तलवार उठायी । जल्दी ही कलियुग ने राजा के पैरों पड़कर अभय की भिक्षा मांगी । अपने यशस्वी वंश की मर्यादा के पालन के लिए शरणागत की हत्या न करने का ही उसने निश्चय किया । राजा ने कलियुग को निवास करने के लिए पांच स्थान -- द्यूत, मद्यपान, स्त्री संग, हिंसा तथा स्वर्ण (धन) दिये ।

'भागवत पुराण' के प्रथम स्कन्ध के प्रारंभिक पृष्ठों में वर्णित यही कथा प्रस्तुत काव्य का उपजीव्य है ।[1] राजा परीक्षित् की कथा इसलिए महत्वपूर्ण है कि उन्हीं के राज्यकाल में कलियुग का प्रवेश हुआ । परीक्षित् कलियुग को जीवित छोड़ना नहीं चाहते थे किन्तु जब उन्होंने केवल द्यूत, मद्यपान, स्त्री-प्रसंग और हिंसा तक ही सीमित रहने की अनुमति मांगी तब राजा परीक्षित ने उसे यह आज्ञा प्रदान कर दी । रोचक बात है कि कलियुग का प्रताप आज भी सबसे अधिक इन्हीं प्रसंगों में प्रत्यक्ष है ।

प्रस्तुत आख्यान का ढांचा पौराणिक है, लेकिन नवीनतम उद्भावना तथा रूपक-योजना ने काव्य को नवीनता प्रदान की है । कलियुग यहां दुष्प्रवृत्तियों का प्रतीक है ।

१-(डा० रामधारीसिंह दिनकर): काव्य के 'आशीर्वाद' ।

सत्ता, पूँजी एवं अनैतिकता का सामंजस्य मानव जाति को किस महाविनाश के गर्त में ले जाता है, यही विचार काव्य का मूलाधार है । काव्य संयोजन ऐसा हुआ है कि काव्य अलौकिक प्रसंगों से मुक्त होकर वर्तमान जीवन के धरातल पर आ गया है । राजा के दुर्भाग्य तथा आत्मग्लानि तथा जनता की विधि को मानते हुए अपनी सत्ता का त्याग करते हैं । यह प्रसंग कवि की मौलिक उद्भावना है । `भागवत` में परीक्षित् को शृंगी ऋषि के शाप से तक्षक साँप डसता है ।

`कुटिया का राजपुरुष`(शिवप्रसाद दीक्षित `वत्स`)

भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री महान् व्यक्तित्व वाले लालबहादुर शास्त्री के आधार पर रचित यह खण्डकाव्य सन् १९६६ ई० में प्रकाशित हुआ । प्रस्तुत काव्य में शांति के अग्रदूत बनकर ताशकंद में मृत्यु को वरण करने वाले शास्त्री जी के महान् व्यक्तित्व की झाँकी अंकित है । इस व्यक्तित्व को भली-भाँति चित्रित करने हेतु कुटिया में जन्म लेने वाले लाल का राजपुरुष बनने तक की कथा का वर्णन काव्य में हुआ है । पुण्य प्रसू भारतमाता का पुण्य रामदुलारी के बेटे के रूप में उदय हुआ । काशी विद्यापीठ से शास्त्री परीक्षा में सर्व-प्रथम उत्तीर्ण हुए तो वे शास्त्री कहलाये । स्वतंत्रता संग्राम के वे प्रमुख सेनानी बन गये । कई बार जेलवास भी भोगना पड़ा । भारत के स्वतंत्र होने पर कुटिया का यह लाल राजमहल तक आये । वे स्वतंत्र भारत के गृहमंत्री बने । सन् छप्पन की रेल दुर्घटना के कारण दुःखी आपने अपने पद से त्याग पत्र दे दिया । फिर भारत के प्रधानमंत्री बन गये, तो शांति की स्थापना के लिए आपने विदेशों में राजकीय यात्राएं कीं । काश्मीर समस्या पर वार्ता के लिए शास्त्रीजी ताशकंद गये । अन्त में समाधान के संधि-पत्र पर हस्ताक्षर कर डाले तथा स्वस्थ नींद सोने लगे । अचानक हृदय-गति के बन्द होने पर भारतीय जनता को शोक सागर में डुबाते हुए शास्त्री जी चल बसे । शास्त्रीजी के अमर व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाला यह काव्य अत्यन्त सफल बना है ।

अनारी-नर (श्री गोपालप्रसाद व्यास)

श्री गोपालप्रसाद व्यास का हास्य रस प्रधान खण्डकाव्य 'अनारी-नर' सन् १९५६ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें कवि ने व्यंग्यपूर्ण शैली में नारी की श्रेष्ठता का शृंखला-बद्ध वर्णन किया है। नर एवं नारी--यही कवि के काव्य का विषय है --

"नर अनुप्रास, प्रस्तर, यमक
नारी यति, गति लय मात्रा है
है पुरुष मील का ही पत्थर,
नारी जीवन की यात्रा है।"

नारी के इस युग में यही सर्वश्रेष्ठ है --

"नारी के बिना अनारी नर"

कारण भी कवि ये बताते हैं --

"नर बेचारा गोबर-गणेश
पूजा ही मिला सवारी को
लेकिन मानव का राजदंड
मिल गया भगवती नारी को।।"

नारी की महत्ता के वर्णन के उपरान्त नारियों के द्वारा कराये गये 'नरों के अन्यायों के प्रतिशोध' सम्बन्धी सम्मेलन का वर्णन है। अन्त में नारी समाज की जय के साथ काव्य समाप्त हो जाता है। नारी-महत्ता के वर्णन के सिलसिले में कवि ने हिन्दी के असंख्य स्त्री-लिंग शब्दों की गिनती भी की है।

यह काव्य तीन भागों में विभक्त है। कवि ने नये ही ढंग से उसके नामकरण भी किये हैं यथा सर्ग : एक, विसर्ग : दो, निसर्ग : तीन। काव्यशीर्षक के बारे में कवि स्वयं लिखते हैं --

"जैसी अकविता - अकहानी, वैसे ही अनारी नर।"[1]

---

१ - अनारी-नर : गोपालप्रसाद व्यास : प्र-भूमिका।

सुकर्णा (नरेन्द्रशर्मा)

सन् १९७० ई० में 'सुकर्णा' का प्रथम संस्करण निकला । 'महाभारत' मध्य भाग की भूमिका में ही प्रस्तुत काव्य की अवतारणा हुई है । यह एक प्रतीकात्मक काव्य है जिसमें कर्ण एवं सुकर्णा सम्बन्धी कथा वर्णित है । सुकर्णा कवि की भावजाता है जिसका उल्लेख 'महाभारत' में नहीं । कवि को उसका संकेत अपने एक तमिल-भाषी मित्र से सुनी लोककथा से प्राप्त हुआ । उस तमिल कथा में संगम नाम की अभिजात कन्या का उल्लेख है जिसे कर्ण अपनी दिग्विजय के दौरान में हर कर लाया था । अभिजात गर्विता संगम ने कर्ण को सूतपुत्र समझकर उसकी प्रणयभिक्षा का तिरस्कार किया । अन्त में कर्ण की मृत्यु के उपरांत उसकी जाति के खुलने पर वह पश्चाताप विकल हो जाती है तथा चिता पर चढ़ जाती है । इसी लोककथा का सुकर्णाबीज बाद में 'सुकर्णा' काव्य के रूप में परिणत हुआ ।

काव्यनायिका सुकर्णा स्वर्णपुरी के अभिजात, वीर एवं धीरोदात्त युवराज की इकलौती बेटी थी । दिग्विजयी कर्ण ने स्वर्णपुरी में चढ़ाई करके राजा को परास्त कर दिया । कर्ण के हाथों राजा की मृत्यु हुई और राजा की इकलौती बेटी को बन्दी बनाकर वे अपने यहां लाये । कर्ण का मन उस सुन्दरी सुकर्णा पर रम गया । लेकिन पितृहंता तथा सूत पुत्र पर उसका मन न रमा । कर्ण सुकर्णा के मनः परिवर्तन के इन्तज़ार में रहा । सब ने कर्ण को अपने कौन्तेय होने का तथ्य उसे बता देने को प्रेरित किया । लेकिन जाति के नाम पर नारी का प्रणय पाना वीर कर्ण नहीं चाहता था । सुकर्णा भी टस से मस न हुई । आखिर कुरुक्षेत्र युद्ध में कर्ण की वीर मृत्यु हुई तथा इस रहस्य का पर्दाफाश हुआ कि कर्ण सूतपुत्र नहीं, कौन्तेयों में अग्रज है । यह जानकर सुकर्णा पश्चातापासी हो जाती है तथा कर्ण की चिता में आत्मसमर्पण करती है ।

प्रवीर (केदारनाथ मिश्र 'प्रभात')

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' जी का खण्डकाव्य 'प्रवीर' सन् १९७० में प्रकाशित हुआ । यह खण्डकाव्य 'महाभारत' की एक लघु कथा पर आधारित है । स्वदेश के लिए

आत्मार्पण करने वाले एक वीर युवक की गाथा ही इसमें वर्णित है । माहिष्मती का प्रतापी राजा नीलध्वज श्रीकृष्ण का परमभक्त था । उनकी पत्नी जना थी । उनका वीर बेटा प्रवीर था । तरुण राजकुमार प्रवीर ने जान लिया कि पाण्डवों के अश्वमेध यज्ञ का अश्व माहिष्मती की सीमा को पहुँच गया है । घोड़े का रक्षक अर्जुन था, श्रीकृष्ण भी उनके साथ था । प्रवीर ने साथियों सहित, अपने देश के स्वाभिमान की रक्षा करने का दृढ़ निश्चय किया । श्रीकृष्ण के उपासक पिता नीलध्वज ने यागाश्व को रोकने से अपने पुत्र को विरत करने का प्रयास किया । लेकिन माता जना ने उसे क्षात्र धर्म के अनुष्ठान करने की प्रेरणा दे दी । याग का घोड़ा बांध लिया गया । प्रवीर तथा अर्जुन में दोनों ओर से युद्ध की तैयारियां हुईं । अर्जुन के बाणों से छिद होकर युवावीर प्रवीर रणभूमि पर गिर पड़ा । श्रीकृष्ण ने झट उसे अपनी गोदी में उठा लिया । माता दुःखी थी कि अपना बेटा अपने प्रण को पूरा न कर सका । इस बीच राजा नीलध्वज ने श्रीकृष्ण तथा अर्जुन को राजमहल बुलाकर उन्हें उपहारों से प्रसन्न कर दिया । जना ने अपने पति के कार्य का खुल्लमखुल्ला विरोध किया । आखिर वह, पुण्यतोया भागीरथी में अपने को विसर्जित करने को प्रस्तुत होती है ।

शिवाजी (उमाकांत मालवीय)

मालवीय जी का खण्डकाव्य 'शिवाजी' सन् १९७० में प्रकाशित हुआ । सुप्रसिद्ध मराठा वीर शिवाजी का ऐतिहासिक चरित्र ही प्रस्तुत काव्य का उपजीव्य है । भवानी स्तवन से काव्य शुरू होता है । फिर शिवाजी के चरित्र के महान गुणों को प्रकट करने वाली घटनाओं का मार्मिक वर्णन मिलता है । शेरनी का दूध लाने वाला शिवाजी सचमुच वीरता का प्रतीक है, अटल गुरु भक्ति का भी अतुल्य निदर्शन है । स्त्रियों के प्रति उनका व्यवहार बहुत ही उदार था । वे अपने को भारतीय संस्कृति का रक्षक घोषित करते थे । एक बार अपने सेनापति आबाजी सोनदेव कल्याण को लूटकर यवन की सुन्दरी पुत्रवधु गैहरबानू को

शिवाजी को भेंट करने के लिए लाता है तो अपने सेनापति के करतूत पर शिवाजी क्रुद्ध एवं लज्जित हो जाते हैं । उसको सम्मान के साथ पति के पास भेज देने की शिवाजी आज्ञा देते हैं —

"गौहर का दीवानाई सा
होगा स्वागत समुचित आदर ।"

शिवाजी का उज्ज्वल चरित्र ही प्रस्तुत काव्य में चित्रित हुआ है ।

उत्तर पथ (नरेन्द्र शर्मा)

सन् १९७० में नरेन्द्र शर्मा का काव्य 'उत्तर पथ' प्रकाशित हुआ । 'महाभारत' के अंतिम भाग की भूमिका में ही कवि ने प्रस्तुत प्रतीकात्मक काव्य की संयोजना की है । महाभारत युद्ध की समाप्ति दुर्योधन वध के साथ होती है । द्रोणपुत्र चिरंजीवी अश्वत्थामा कौरव पक्ष का अंतिम वीर पराक्रमी था । उसके महारोष व पराक्रम के कारण युद्ध की अंतिम रात्रि संहार की भीषण रात्रि रही । अन्त में विदुर के देहत्याग का वर्णन भी है । देहत्याग के समय के निकट आने पर वे युधिष्ठिर के पास गये । विदुर ने खड़े खड़े ही देह-त्याग किया तथा उनकी आत्मा युधिष्ठिर के हृदय में समा गयी । वे दोनों धर्म के अंश से ही पृथ्वी पर अवतरित हुए थे ।

प्रस्तुत काव्य में नरेन्द्र शर्मा ने प्रतीकों की सफल संयोजना की है । अश्वत्थामा चिरंजीव है — ऐसा विश्वास है । लेकिन वे पीड़ा भीरु थे । अपनी स्थिति के कारण वे पाँच सहस्र वर्ष अतिपीड़ा भोग में रहे — पुराणवेत्ताओं का ऐसा विश्वास है । "शिवपुराण और महाभारत में अश्वत्थामा को शिव का अंशावतार बतलाया गया है । देवी भागवत और श्रीमद्भागवत में उन्हें भावी व्यास कहा गया है ।"[१] धर्मराज युधिष्ठिर मूर्धन्य आकाश

१- काव्य की भूमिका, पृ० ४.

तत्व का प्रतीक है । भीम, अर्जुन, नकुल व सहदेव क्रमशः पवन, आग, जल तथा स्थल तत्वों के प्रतीक रूप में आये हैं । कृष्णा पृथ्वीमाता है । अभिमन्यु को चन्द्रमा का अवतार कहा गया है । इनमें अश्वत्थामा और युधिष्ठिर अपनी नियति से बाध्य थे जिन्हें अपनी इच्छा के प्रतिकूल कार्य पड़ने ।

इस प्रतीकात्मक कलेवर में कविवर ने कथा सूत्र को आद्यंत पिरो रखा है । महाभारत के उत्तर भाग ही काव्य की भूमिका है । पात्रों का मनोवैज्ञानिक वर्णन काव्य को अभिनव जीवन प्रदान कर देता है । 'उत्तर जय' एक गाथा-काव्य है, जो स्वयं कवि के शब्दों में 'खण्डकाव्य की नयी विधा के अन्तर्गत'[1] आता है ।

भस्मांकुर (नागार्जुन)

श्री नागार्जुन का खण्डकाव्य 'भस्मांकुर' सन् १९७० में प्रकाश में आया । प्रस्तुत खण्डकाव्य कालिदास प्रणीत 'कुमार संभव' के 'मदन-दहन' प्रसंग पर आधारित है । महादेव शिवजी हिमवान पर घोर तपस्या में लीन बैठे थे । हिमवान की बेटी पार्वती(उमा) । उन्हें वर रूप में प्राप्त करने के लिए उनकी सेवा में व्यस्त थी । शिवजी की तपस्या का भंग करने के लिए देवेन्द्र की प्रेरणा पाने पर कामदेव, पत्नी रति तथा प्रिय सखा वसंत के साथ हिमगिरि पहुँच गये । असमय में ही उन्होंने वसन्त ऋतु की रचना करके सम्मोहक वातावरण स्थापित कर दिया । कामदेव ने शिवकी तपस्या में विघ्न डाला । वह इतना ही चाहता था कि शिव पार्वती की ओर आकर्षित हो जाय । वैरागिक ललना का आभास पाकर अकस्मात ही महादेव का ध्यान भंग हुआ । नेत्र खुले तो अपनी ओर निशाना साधे खड़े पुष्पधन्वा मदन पाये । उनका कोपानल अविलम्ब भड़क उठा । तत्क्षण ही कामदेव की कोमल काया जलकर खाक हो गयी । जड़-जङ्गम-चेतन हाहाकार मच गया । अपने पति मदन के खाक हो जाने पर कामिनी रति के दुःख की सीमा न रही । आत्मदाह करने के लिए उसने अपने सखा वसंत से

१. उत्तरजय : भूमिका, पृ० ६.

चिता सजाने का आग्रह किया । एकदम आकाशवाणी हुई कि `मदन भस्म हो नहीं सकता, वह अंकुर रूप में सर्वत्र और सर्वदा वर्तमान रहेगा ।

`कौन मदन तुम को कर सकता नष्ट ?
जयति जयति भस्मांकुर जयति अनंग.....`

यहीं काव्य की समाप्ति हो जाती है । वस्तुतः इसमें कुमारसंभव की कथा के एक छोटे अंश का पुनर्कथन ही हुआ है । काव्य के प्रारंभ में वसंत ऋतु का मनोहारी वर्णन तथा अंत में रति का विलाप मार्मिक हुआ है । काव्य की भाषा-शैली पुरानी है । प्रस्तुत काव्य में कवि ने वार्णिक वृत्त छंद का सुष्ठु प्रयोग किया है । उसकी कथा, वक्तव्य तथा शिल्प सब पुराने हैं । नयी कविता के युग में यह कृति पुरानी लगती है । ``नयी कविता` और पिछले दशक की कविता ने हिन्दी कविता की प्रकृति को इतना बदल दिया है कि `भस्मांकुर` का अध्ययन विचित्र प्रतिक्रिया जगाता है । लगता है कि यह कृति बहुत पुरानी है, इतनी पुरानी कि द्विवेदी-युग के मैथिलीशरण गुप्त के खण्डकाव्यों का स्मरण हो आये[१] ।

छायावादोत्तर खण्डकाव्य : सामान्य विशेषताएं

छायावादोत्तर काल `नयी कविता` तथा कविता में नये प्रयोगों का काल रहा है । नयी कविता या अकविता के युग में विभिन्न प्रबन्ध काव्यों की अपनी अलग विशेषताएं हैं । इस काल में खण्डकाव्य क्षेत्र में कई नये प्रयोग हुए । प्रतीकात्मक एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण युक्त कई खण्डकाव्य अब विरचित हुए । तत्कालीन अधिकांश काव्यों के विषय पुराने ही रहे । लेकिन ये काव्य नितांत नूतन भावों व शिल्प के साथ ही उपस्थित हुए । पौराणिक प्रख्यात आख्यानों को मौलिक उद्भावनाओं के बल पर नवीन परिवेशानुकूल नवीन रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न इस काल के खण्डकाव्य रचयिताओं ने किया है । पुरानी कथा-

---

१- भस्मांकुर - हरदयाल । समीक्षा--त्रैमासिक, जनवरी, १९७२.

वस्तुओं की इन खण्डकाव्यों में आकर युक्तिसंगत एवं मनोवैज्ञानिक व्याख्याएं प्रस्तुत हुईं । कथावस्तु से अधिक पात्रों के आंतरिक द्वन्द्वों व संघर्षों के चित्रण को ही काव्य में अधिक स्थान प्राप्त हुआ ।

पौराणिक कथावस्तुओं के आधार पर उत्तर जय, रश्मिरथी, युद्ध, रूप छाया, शल्यवध, दानवीर कर्ण, कौन्तेय कथा, गुरुदक्षिणा, भस्मांकुर जैसे अनगिनत काव्य रचे गये । नहुष, रत्ना की बात, चांदनी रात और अजगर, तप्तगृह, शुक्रार्य, आत्मजयी, द्रौपदी आदि मनोवैज्ञानिक, विचारप्रधान एवं प्रतीकात्मक खंडकाव्य हैं । सामाजिक वस्तुओं पर गृहलक्ष्मी, अरगम की बेटी, कामिनी जैसे काव्य निर्मित हुए । ऐतिहासिक खण्डकाव्य भी अब खूब प्रणीत हुए । अजेय पौरुष, कोणार्क, सिंहद्वार, चित्तौड़ का जौहर आदि काव्य प्राचीन इतिहास के आधार पर रचे गये तो, भारतवर्ष के आधुनिककालीन इतिहास पर आधारित आत्मोत्सर्ग, तात्या टोपे, वीर लाल पद्मधर, झांसी की रानी, मुक्तियज्ञ, कारा, स्वतंत्रता की बलिवेदी जैसे काव्य विरचित हुए । बंकिम की एक प्रासंगिक कथा के आधार पर 'अमृत पुत्र' खण्डकाव्य विरचित हुआ । 'अनारी-नर', 'काक दूत' जैसे हास्य-व्यंग्यात्मक शैली के खण्डकाव्य भी अब निर्मित हुए । यों कथावस्तु के भिन्न भिन्न प्रकारों पर आधारित खण्डकाव्य का प्रणयन छायावादोत्तर काल में हुआ ।

सर्गबद्ध व सर्गरहित दोनों प्रकार के खण्डकाव्य अब रचे गये । कुरुपांच, रश्मिरथी, प्रवीर, गृहलक्ष्मी, द्रोण चक्रव्यूह आदि सर्गबद्ध हैं तो चांदनी रात और अजगर, रत्ना की बात, भस्मांकुर, मुक्तियज्ञ आदि काव्य सर्गरहित हैं । सर्गों के लिए कतिपय खण्डकाव्य प्रणेताओं ने दूसरी भी अभिधायें दी हैं यथा-- उच्छ्वास (रूप छाया) सोपान (परीक्षित), खंड (सौमित्र, आत्मोत्सर्ग), आहुति (तात्या टोपे, प्रणार्पण), स्पर्श (पाषाणी) ।

वस्तुवर्णन से अधिक इस काल के खण्डकाव्यों में पात्रों के विचारों व अन्तर्द्वन्द्वों का मार्मिक चित्रण हुआ है। कतिपय काव्यों में पौराणिक पात्र केवल प्रतीक मात्र होते हैं उनकी आत्मा सदैव आधुनिक युग की रहती है। इस संयोजना यद्यपि इन खण्डकाव्यों में उपलब्ध है लेकिन वह नितांत गौण है। इन खण्डकाव्यों में पात्रों के आंतरिक संघर्षों व मनोवैज्ञानिक चित्रणों को इतना प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ कि उनके बीच रसों की सर्वांगपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए गुंजाइश नहीं रही। इस काल के अधिकांश खण्डकाव्य मुक्त-छन्द में लिखे गये। छन्दबद्ध खण्डकाव्य भी उपलब्ध हैं।

यद्यपि छायावादोत्तर युग में आकर खण्डकाव्यों ने रूप एवं भाव में परिवर्तन को प्राप्त किया है लेकिन काव्य रूप का मूलभूत तत्व तो इन अभिनव खंडकाव्यों में अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है।

आख्यानक कविताएं

उपर्युक्त खण्डकाव्यों के अतिरिक्त ऐसी भी कुछ कृतियां उपलब्ध होती हैं जो कथा तत्व से युक्त हैं। ऐसी ही कृतियां लम्बी आख्यानक कविताएं पुकारी जाती हैं जो अंग्रेजी के narrative Poetry (नरेटिव पोएट्री) के आसपास आ जाती हैं। इन कृतियों में किसी घटना, विचार या वस्तु से प्रेरित कवि की उस अनुभूति की अभिव्यक्ति होती है जिसे भावखण्ड या विचार खंड कहा जा सकता है। इन आख्यानक कविताओं में किसी समस्या, वस्तु या घटना को लेकर उसका सर्वांगपूर्ण वर्णन, विवेचन या आख्यान तो नहीं किया जाता। उसमें घटना की एक झलक, वस्तु का एक मनोरम वर्णन या समस्या के एक पक्ष पर विचार होता है। इनमें प्रबन्धत्व का पालन रहता है, इस दृष्टि से तो यह लघु प्रबन्धकाव्य की कोटि में आ जाता है। "इन लघु प्रबन्धों के अन्तर्गत वे समस्त कृतियां आती हैं जिनमें प्रबन्ध का तारतम्य वर्तमान होता है, परन्तु जो आकार में अति-विस्तृत नहीं होती, जिनका अनेक सर्गों अथवा खण्डों में विभाजन नहीं होता तथा जिनके

विषय का व्यापक धरातल ग्रहण कर, सर्वांग या समग्र विवेचन नहीं किया जाता, केवल विषय का एक पक्ष, पहलू या एकांग-चित्रण होता है।"[1] पद्यकथाएं तथा आख्यानक गीतियां इसके अन्तर्गत समाहित होते हैं। हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर ऐसे प्रबन्ध काव्य उपलब्ध होते हैं तथा आधुनिक काल में भी ऐसी लघु कृतियों का प्रचुर प्रचार है। सन् १९०० की 'सरस्वती'[2] में किशोरी लाल गोस्वामी की पद्य कथा 'सावित्री प्रबोधन' प्रकाशित हुई, जिसमें भारतीय नारी के आदर्श धर्म के उद्घाटन हेतु कवि ने सावित्री-सत्यवान के प्रख्यात आख्यान का वर्णन किया है। इस प्रकार की कुछ कथाएं श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय की 'मेवाड़-गाथा' में संकलित है। इन कथाओं में चित्रित प्रसंगों का रंगस्थल बाह्य जगत का है तथा स्वरूप स्थूल और घटनात्मक है। लघु आकार के कारण इनमें विशेष वर्णनात्मक प्रसंगों तथा पात्रों के अन्तर्मन का चित्रण नहीं होता। इन कृतियों में कलात्मक उत्कर्ष, चमत्कारपूर्ण अभिव्यंजना तथा उत्कृष्ट शैली का अभाव रहता है जो इन कृतियों को खण्डकाव्य की कोटि से तिरस्कृत करता है।

प्रसाद जी के काव्य संग्रह 'लहर' में भी ऐसी कुछ पद्य कथाएं संग्रहीत हैं। अयोध्या का उद्धार, वन मिलन, प्रेमराज्य आदि ऐसी ही कृतियां हैं। इनमें किसी न किसी प्रसंग का अपूर्ण चित्र उपस्थित रहता है। इनका आकार भी इतना सीमित रहता है कि कथा विस्तार के लिए इसमें गुंजाइश ही नहीं रहती। इस ढंग में मैथिलीशरण गुप्त जी ने अनेकों लघुकृतियों का प्रणयन किया। 'रत्नावली', 'उत्तरा से अभिमन्यु की विदा', द्रौपदी-दुकूल' आदि ऐसी ही रचनाएं हैं। कथा की दृष्टि से तथा काव्य रूप की दृष्टि से ये सब साधारण स्तर की रचनाएं हैं। लेकिन इस विधा का चरम उत्कर्ष सोहनलाल द्विवेदी का काव्य 'वासवदत्ता', निराला कृत 'राम की शक्तिपूजा' दिनकर कृत 'परशुराम की प्रतीक्षा',

---

१- आधुनिक हिन्दी-काव्य में रूप-विधाएं — डा० निर्मला जैन, पृ० २९६.

२- सरस्वती : जुलाई अंक, १९०० ई०.

रामकुमार वर्मा कृत `शुभा` आदि कृतियाँ में गणनीय है । ये काव्य विषय तथा गरिमामयी शैली की दृष्टि से उस उत्कृष्ट कोटि पर पहुँचने वाले हैं कि ये विशिष्ट कोटि के आख्यान काव्य के अन्तर समाहित हो जाते हैं । इन काव्यों में पौराणिक या ऐतिहासिक आख्यान के आधार पर कथा का विकास हुआ है । अपने लघु कलेवर में भी `राम की शक्ति पूजा` काव्य महाकाव्योचित गरिमा को वहन करता है । काव्यरूप की दृष्टि से इन्हें खण्डकाव्य से अधिक लम्बी आख्यानक कविता (नैरेटिव पोयट्री) कहना ही अधिक समीचीन होगा ।

ऐसी रचनाएं स्वरूप तथा काव्यलक्षण की दृष्टि से पूर्णतः खण्डकाव्य की कोटि में आने वाली नहीं होती, अतः ऐसी रचनाओं का सविस्तर वर्णन यहां प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है । यही नहीं अलग पुस्तक के रूप में इनका प्रकाशन भी नहीं हुआ है ।